पाणिनीय प्रवेशिका

(संस्कृत सीखने के लिये पाणिनीय-व्याकरण के
नियमों की सरल हिन्दी-व्याख्या)

लेखक
स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती
(पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	संधि-विषय	३
२.	नामिक	९
३.	आख्यातिक	३३
४.	कृदन्त	५७
५.	स्त्रीप्रत्यय तथा तद्धित	६३
६.	समास	६६
७.	परिशिष्ट [पाणिनीय प्रवेशिका हिन्दी सूत्रों में]	७८

thearyasamaj.org

भूमिका IV

संस्कृत भाषा हमारी जाति के बहुमूल्यतम रत्नों का कोष है, हमारे धर्म्मग्रन्थों का प्राण है। देववाणी कहकर हम उसका आदर करते हैं और न जाने हमारे कितने श्रद्धामयभाव उसके चरणों में उपहार होते हैं। इन सबके साथ जातीयता की दृष्टि से सबसे बड़ी महत्त्व की बात यह है कि हमारे भावी साहित्य कल्पतरु का, क्या शब्दकोष की दृष्टि से, क्या भावों की दृष्टि से एकमात्र जीवन संस्कृत-साहित्य है। कोई भारतीय बालक और विशेषत: आर्य्यबालक संस्कृत नहीं कहला सकता जबतक उसे संस्कृत का ज्ञान न हो। यही कारण है कि आज हमारे देश में संस्कृत पढ़ने के लिये एक नया उत्साह जागृत हुआ है। किन्तु कहते दु:ख होता है कि कितने ही उत्साह दीपक सहानुभूति का वायु न मिलने के कारण बुझ जाते हैं। सहानुभूति तो एक ओर रही जब कोई नवीन प्रविविक्षु किन्हीं पण्डित महाराज के पास जाता है तो पहिले उनके परिश्रम के चित्रण से ही वह इतना घबरा जाता है कि आगे पढ़ने को चित्त नहीं होता। और यदि उसने कहीं हतोत्साह न होकर दो-चार दिन पढ़ने की धृष्टता भी की तो पण्डित जी की परिभाषा-जटिल वाक्य-रचना में उलझकर तो अवश्य ही उसे हथियार रख देने पड़ते हैं। फिर वह न केवल स्वयं हतोत्साहित होता है किन्तु अपने सरीखे अनेक नवोत्साहियों को उल्टे पैर फिरा देता है। एक ओर तो हमारी श्रमशक्ति का ह्रास दूसरी ओर यह भारी चित्रण ! पग आगे कैसे चले। इन्हीं सब कारणों ने मुझे यह प्रवेशिका लिखने को बाधित किया है।

इसके सिवाय एक और श्रेणी है जो मुझे एक प्रवेशिका लिखने को बाधित कर रही है। वह श्रेणी मेरी स्नेहागार देश-भगिनियों की है। कितने ही सज्जन अपनी कन्याओं को संस्कृत पढ़ाना चाहते हैं किन्तु

उचित प्रबन्ध न हो सकने के कारण उन्हें यह विचार छोड़ना पड़ता है। चाहे माता-पिता धन व्यय करने के लिये भी तय्यार हों तथापि कुल-कन्याओं को पढ़ाने में गुरु में विद्या के अतिरिक्त और भी कितनी बातों का ध्यान करना पड़ता है, यह विज्ञजन स्वयं जान सकते हैं। इसलिये यदि इस पुस्तक द्वारा मैं अपनी बेटियों, बहिनों और देश की भावी माताओं को वेदमन्त्रों के समझने और कालिदास से बातचीत करने में कुछ सहायता कर सका तो अपना यत्न सफल समझूंगा।

इस पुस्तक के क्रम के विषय में दो-चार बात कह देना भी यहां अप्रासङ्गिक न होगा। व्याकरण की प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में निम्नलिखित दोष हैं :-

१—यह व्याकरण को संस्कृत भाषा के पढ़ने का साधन नहीं किन्तु जीवन का एक उद्देश्य बनाती है।

२—उसके पढ़ाने का माध्यम संस्कृत या संस्कृतकल्प परिभाषा-जटिल पण्डित-मण्डलीमात्र की प्रसिद्ध भाषा है जिसे सीखने में विद्यार्थियों को बड़ा श्रम उठाना पड़ता है।

३—उसका उद्देश्य पाणिनीय व्याकरण पढ़ाना है किन्तु यह उससे पूरा नहीं होता। पाणिनि महाराज ने व्याकरण को इतना छोटा कलेवर इसलिये दिया था कि वह सुगमता से याद किया जा सके। किन्तु वर्तमान प्रणाली में सूत्रों का अर्थ संस्कृत में स्वतन्त्र रूपेण याद करना पड़ता है। उसका सूत्र से क्या सम्बन्ध है, सूत्र में से वह अर्थ कैसे निकल आया यह विद्यार्थी को समझ ही नहीं आता। क्योंकि विद्यार्थी सूत्र को वहां नहीं पढ़ता जिस प्रकरण में कि उसकी स्थिति है किन्तु प्रकरण से अलग करके प्रयोग स्थल में उसे वह याद करना पड़ता है। इससे कोरी रटन्तम् में समझदार आदमी भी घबरा उठता है। इन्हीं सब कारणों से

श्री स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ-प्रकाश में कौमुदी को त्याज्य लिखा है अन्यथा कौमुदीकार के पांडित्य को कोई दोष नहीं दे सकता। उनके शब्द यही हैं **"जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत चन्द्रिका, कौमुदी मनोरमादि के पढ़ने से पच्चीस वर्षों में भी नहीं हो सकता। जैसे पहाड़ खोदना कौड़ी का लाभ होना"**[१] इससे स्पष्ट है कि वह इन ग्रन्थों में सबसे बड़ा दोष समयहानि समझते थे। उनके वेदाङ्ग-प्रकाश से यह बात भी स्पष्ट है कि वे सरल हिन्दीभाषा को माध्यम बनाना चाहते थे। वर्तमान प्रवेशिका इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर निम्नलिखित बातों का यत्न करती है :-

१—व्याकरण को संस्कृत भाषा पढ़ाने का साधन बनाना।

२—इसका माध्यम सरल आर्य्य भाषा (हिन्दी) है।

३—इसका यत्न है कि विद्यार्थी यथासम्भव शीघ्र पाणिनीय अष्टाध्यायी को समझने लगे और सीधा उसे उपयोग में लाने लगे।

एक बात हमें और कहनी है। इस पुस्तक में हमने कई स्थानों पर अरुन्धती दर्शन न्याय से काम लिया है। जैसे हमने 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इस सूत्र को इस प्रवेशिका में नहीं रक्खा। जब तक व्यवधान का प्रश्न विद्यार्थी के हृदय में स्वयं न उठे तब तक आरम्भ में इस सूत्र का बोझ डालना हमने उचित नहीं समझा। आशा है कि समालोचक महोदय इसका ध्यान रक्खेंगे। हमें आशा है कि विद्वान् लोग इसकी त्रुटियों को दूर करेंगे और जैसे भी हो किसी दिन संस्कृत भाषा ही हमारी भाषा होगी। शायद यह एक स्वप्न है।

---

१. सत्यार्थप्रकाश तृतीय सम्मुल्लास।

चतुर्थ संस्करण का प्रारम्भिक वक्तव्य

आजकल प्राय: संस्कृत व्याकरण पढ़ाने के लिये जितनी पुस्तकें लिखी जाती हैं वे दो प्रकार ही हैं :-

(१) मध्यकालीन सिद्धान्तकौमुदी की पद्धति,

(२) अर्वाचीन पाश्चात्य पद्धति अनुसार ।

प्रथम प्रकार की पुस्तकों में यह दोष है कि उनमें विद्यार्थियों का बड़ा समय नष्ट होता है । इस पद्धति में व्याकरण एक भाषा जानने के साधन के स्थान में जीवन का लक्ष्य बन जाता हैं ।

दूसरी पद्धति में यह दोष है कि इसमें गुण, वृद्धि आदि व्याकरण की परिभाषाओं की उपेक्षा की जाती है । इसलिये इस पद्धति से पढ़ने वाले पुरानी परिपाटी के पढ़ने वालों से बिल्कुल लाभ नहीं उठा सकते और न उनकी बात समझ सकते हैं ।

वर्तमान प्रवेशिका में इन दोनों पद्धतियों का समन्वय करने का यत्न किया गया है । इसमें व्याकरण के सब अङ्गों के मौलिक नियम सरल भाषा में दे दिये गये हैं किन्तु साधन-प्रक्रिया पुरानी रक्खी गई है । आशा है यह समन्वय संस्कृत पढ़ने की इच्छा रखने वालों के लिये हितकर सिद्ध होगा ।

आख्यातिक में भू तथा एध के स्थान में नन्द् तथा वन्द् धातु रख दी गई है । क्योंकि यह अधिक सुगम है । परमात्मा की सब वन्दना करें तथा आनन्दित हों यही हमारी भावना है ।

बुद्धदेव विद्यालङ्कार (समर्पणानन्द सरस्वती)

ओ३म्

विभक्तियों के अभ्यास के लिये नमूने के श्लोक

(१) कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूत धनधान्यवान्॥ प्रथमा॥

(२) त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥ द्वितीया॥

(३) श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्नतु चन्दनेन॥ तृतीया॥

(४) विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य, साधोर्विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥ चतुर्थी॥

(५) दुग्धम् ग्रामात् ज़लम् कूपात् धनं लोकात् फलं वनात्।
भक्ति युक्तेन मनसा शिष्यो नित्यमुपाहरेत्॥ पंचमी॥

(६) बुद्धिर्यस्य बलंतस्य निर्बुद्धेस्तु कुतोबलम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किम् करिष्यति॥ षष्ठी॥

(७) घने वने घोर दवाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमास्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि॥सप्तमी॥

thearyasamaj.org

प्रवेशिका

संस्कृत व्याकरण सामान्येन छः भागों में विभक्त है (१) नामिक (२) आख्यातिक (३) कृदन्त (४) तद्धितान्त (५) समास (६) सन्धि। इन में से प्रथम दो मुख्य हैं।

१. नामिक—भाषा वाक्यों की बनी होती है, और सरलतम वाक्य के दो भाग होते हैं, नाम और क्रिया। जैसे देवदत्त जाता है इस वाक्य में **'देवदत्त'** एक **नाम** है और **'जाता है'** एक **क्रिया** है। इसी देवदत्त नाम के हम 'देवदत्त को' 'देवदत्त ने' 'देवदत्त के लिये' 'देवदत्त से' 'देवदत्त पर' देवदत्त आदि अनेक रूप पाते हैं। इन्हीं भिन्न-भिन्न अर्थों में शब्दों के भिन्न-भिन्न रूपों को बतलाने वाले व्याकरण के भाग का नाम **'नामिक'** है, क्योंकि वह **'नाम'** के रूप बतलाता है।

२. आख्यातिक—क्रियाओं का ही दूसरा नाम आख्यात है। क्रियाओं के भी 'जाता है' 'जाते हो' 'जाता हूं' 'जाते हैं' 'जायेंगे' आदि अनेक रूप होते हैं। इन्हीं काल अवस्थादि के कारण क्रियाओं के भिन्न-भिन्न रूपों को बतलाने वाले भाग का नाम **आख्यातिक** है, क्योंकि यह **'अख्यात'** के रूप बताता है। इन दो भागों को जानकर और भागों के बिना जाने भी हम कुछ न कुछ वाक्यरचना कर सकते हैं इसी लिये ये दोनों भाग मुख्य हैं।

३. कृदन्त—यदि हम भाषा को कुछ ध्यान से देखें तो हमें कई एक विचित्र बातें पता लगेंगी। जैसे एक शब्द 'फिरकी' ले लीजिये। इसका अर्थ है 'फिरने की क्रिया को करने वाली।' अब 'फिरने की क्रिया' इतना अर्थ तो 'फिर' का हुआ, शेष 'करने वाली' किसका अर्थ है। यह अर्थ 'की' इस हिस्से का है। बस, इसे हम व्याकरण की भाषा में यों कहेंगे कि 'फिर' इस धातु से 'करने वाला' इस अर्थ में 'की' प्रत्यय हुआ। इसी प्रकार संस्कृत व्याकरण का जो भाग (क) संस्कृत धातुओं से (ख) अथवा

शब्द और धातु से शब्द बनाने का मार्ग बताता है उसे **कृदन्त** कहते हैं। इसे हम धातुजिक भी कह सकते हैं। (ख) ख भाग की विशेष व्याख्या कृदन्त के प्रकरण में करेंगे।

४. तद्धितान्त तथा स्त्री-प्रत्ययान्त—हम 'लोटा' से 'लुटिया', कुत्ता से 'कुतिया' आदि अनेक स्त्री-लिङ्ग शब्द भाषा में बनाते हैं। इसी तरह चमक से चमकीला, ढीठ से ढिठाई, नरम से नरमाई आदि शब्दों से शब्दों को बनाते हैं। यह शब्दों से शब्द बनाने की क्रिया बतलाने वाला भाग, क्रमशः स्त्रीप्रत्याया और तद्धितान्त कहलाता है। इसे हम 'प्रातिपदिकीय' कह सकते हैं।

५. सामासिक—समास का अर्थ है शब्दों का संक्षेप तथा शब्दों के मेल से शब्द बनाना। हम भाषा में पनघट आदि कई एक समास के शब्द देखते हैं। पनघट इस शब्द की रचना को देखने से पता लगेगा कि यह शब्द वास्तव में 'पानी का घाट है।' किन्तु जिस प्रकार रोज़ काम में आने से वस्तुएं घिसजाती हैं इसी प्रकार यह शब्द बार-बार प्रयोग के लिये लम्बा होने के कारण घिस कर पनघट रह गया है। अब यह एक शब्द है। इसी प्रकार संस्कृत में शब्दों को मिलाकर शब्द बनाने वाला व्याकरण का भाग 'सामासिक' कहलाता है, क्योंकि वह 'समास' की प्रक्रिया बताता है।

६. संधिविषय—दो अक्षरों के मेल को सन्धि कहते हैं जिस प्रकार पीला और नीला मिल कर हरा रंग बन जाता है ऐसे हम शब्दों में भी देखते हैं। उदाहरण के लिये 'सत्चा' इसको जल्दी-जल्दी बोलो तो सच्चा निकलेगा। पता लगा कि त् के बाद च् होने से त् की आवाज भी च् की हो जाती है। इसी प्रकार अक्षरों से अक्षरों के मिलने के नियमों को बताने वाला भाग संधि-विषय कहलाता है, क्योंकि वह अक्षरों से अक्षरों की संधि मिलने के नियम बताता है, क्योंकि जहां कोई नाम प्रत्यय से मिले, कोई धातु प्रत्यय से मिले, कोई शब्द से मिले इन सभी अवस्थाओं में अक्षर का अक्षर से मिलना आवश्यक है इसलिये यह भाग सभी भागों में उपयोगी है। अतः सब से पहिले इसी से पाठ आरम्भ होगा।

प्रकरण १

संधि-विषय

॥ प्रत्याहार ॥

एक पाठशला में चार विद्यार्थी हैं-देवदत्त, विष्णुमित्र, उदयवीर और देवशर्म्मा। अब इन नामों को इसी क्रम में रखके यदि कोई पहले दो का नाम लेना चाहे तो कहे 'देत्र' यदि पहिले तीन का नाम लेना चाहे तो कहे 'देर' यदि चारों का नाम लेना हो तो कहे 'देर्म्मा'। तो वह 'देत्र' 'देर' 'देर्म्मा' यह तीन प्रत्याहार बनावेगा। इसी प्रकार पिछले तीन का नाम लेने के लिये 'विर्म्मा' और पिछले दो का नाम लेने के लिये 'उर्म्मा' यह दो प्रत्याहार बनेंगे। बीच के दो नाम लेने के लिये 'विर' यह प्रत्याहार बनेगा। इस प्रकार एक के आदि के अक्षर और दूसरे के अन्तिम अक्षर को मिलाकर एक समुदाय का नाम बनाने को व्याकरण में प्रत्याहार कहते हैं।

संधि के नियम बताने में भी कई बार अनेक भिन्न-भिन्न अक्षर-समुदायों का नाम लेने की आवश्यकता होगी। इसीलिये व्याकरण-शास्त्रकारों ने ये १४ सूत्र बनाये हैं।

अ इ उण्। ऋ लृक्। ए ओङ्। ऐ औच्। ह य व रट्। ल ण्। ञ म ङ ण नम्। झ भञ्। घढधष्। ज ब ग ड दश्। ख फ छ ठ थ च ट तव्। क पय् श ष सर्। हल्। अब यदि **इउऋऌ** इतने पर कोई नियम लगता हो तो हम कहेंगे कि **'इक्'** पर यह नियम लगता है।

जब कहना हो **एओऐऔ** पर यह नियम लगता है तो कहेंगे **'एच्'** पर यह नियम लगता है। जब कहना हो कि **अइउऋऌ** इन पर यह नियम लगता है तो कहेंगे **'अक्'** पर यह नियम लगता है।

इसमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि जिन दो को मिलाकर एक प्रत्याहार बनता है उनके बीच में जो हल् (् ऐसे चिह्न वाले जैसे क्) अक्षर हों उनकी गिनती नहीं होगी जैसे **'एच्'** में **एओङ्** इन तीसरे सूत्र वाले **ङ्** की गिनती न होगी।

प्रत्याहार एक साधारण अक्षर के साथ उन के बाद का कोई हल् (् ऐसे चिह्न वाले जैसे ऋलृक् में क्) अक्षर जोड़ने से बनेंगे जैसे अण् इक् अक् अच् एच् झल् जश् आदि।

॥ अच्-संधि-प्रकरण ॥

अच् अर्थात् स्वरों से स्वरों के मिलने के नियम बताने वाले प्रकरण को अच्-संधि-प्रकरण कहते हैं ॥

कुछ एक ध्यातव्य बातें

१—'क' यह दो अक्षर हैं एक 'क्' दूसरा 'अ'। साधारण भाषा पढ़ाने में हम 'क' को एक अक्षर समझते हैं किन्तु वस्तुतः यह दो अक्षर हैं पहिला 'क' जिसका उच्चारण बिना अ वा किसी और स्वर के कोई नहीं कर सकता और दूसरा 'अ'।

२—इसी प्रकार वि में दो अक्षर है पहिला व् दूसरा इ। व्याकरण में 'परे होने पर' यह शब्द बार-बार आवेंगे इनका तात्पर्य यह है कि नागरी लिपि बांई ओर से दांई ओर को लिखी जाती है। इसलिये जो अक्षर पहिले आवेंगे वे पूर्व (पहिले) और जो पीछे आवेंगे वे **परे** कहलावेंगे। जैसे 'विमला' इस शब्द में सबसे पहिले 'व्' उससे परे 'इ' उससे परे 'म्' उससे परे 'अ' उससे पर 'ल्' और उससे परे 'आ' है। जैसे व् इ म् अ ल् आ = विमला। कई लोग ह्रस्व इ में बहुत भूल करते हैं क्योंकि वह वस्तुतः आवाज में पीछे होने पर भी लिखने में पहिले आती है जैसे **'इति आदि'** इस में वे कह उठते हैं कि 'इ' से परे 'त्' है, किन्तु यह भूल है।

क्योंकि यह वस्तुत: **'इत् इ आदि'** यों हैं इसलिये **'त्'** से परे **'इ'** और उससे परे **'आ'** है। इस में 'इ' से परे त् और उससे परे 'आ' है ऐसा कभी न कहना चाहिए।

३—**'अच्'** इस प्रत्याहार में सब स्वर आ जाते हैं अत: व्याकरण में स्वर के स्थान में बहुधा **अच्** का ही व्यवहार होता है। यहां तक कि प्राय: संस्कृत जानने वाले लोग **अच्** ही कहते हैं स्वर नहीं कहते।

गुण

संज्ञा गुण। **अ** और **एङ्** को अर्थात् **अ ए ओ** इन तीन अक्षरों को **गुण** कहते हैं। गुण = अ, ए, ओ।

परिभाषा १—जब किसी अक्षर के स्थान पर कोई अक्षर आए ऐसा कहा जाय, तो जो अक्षर उस अक्षर वा अक्षर समुदाय से सबसे अधिक अन्तरतम = सदृशतम मेल खाता होगा वह उसके स्थान में होगा। इसको **'अन्तरतम'** का नियम कहते हैं।

नियम १-अ से इक् [इ उ ऋ ऌ] परे होने पर गुण (अ + ऋ =) अर्, (अ + इ =)ए, (अ + उ =)ओ।

जैसे 'राज + ऋषि' इस शब्द में 'राज' वाले अ से परे 'ऋषि' वाला 'ऋ' है, इसलिये यहां 'अ' से परे 'इक्' है। यहां गुण होगा अर्थात् 'अ' और 'इ' के स्थान पर गुण (= अ, ए, ओ में से कोई एक अक्षर) होगा। आवाज़ मिलाने से मालूम होगा कि 'अ' और 'ऋ' से 'अ' की आवाज़ ही इन तीनों (अ, ए, ओ) में से सब से अधिक मेल खाती है। इसलिये अ + ऋ के स्थान पर अर् रूप गुण होकर राजर्षि बना। जब भी ऋ के स्थान पर अ होगा तो परे र् और लग जायेगा। इसी प्रकार **धर्म्म + इन्द्र** इस शब्द में **'धर्म्म'** वाले **अ** से परे **'इन्द्र'** वाली **'इ'** है इसलिये यहां 'अ' से परे 'इक्' हुआ। यहां गुण होगा अर्थात् 'अ' और 'इ' दोनों के स्थान

पर गुण (अ ए ओ) में से कोई अक्षर होगा। आवाज़ मिलाने से मालूम होगा कि 'अ' और 'इ' से 'ए' की आवाज़ ही इन तीनों (अ ए ओ) में से सब से अधिक मेल खाती है इसलिये **अ इ** के स्थान पर गुण (ए) होकर **'धर्मेन्द्र'** यह रूप हुआ।

इसी प्रकार **'पर + उपकार'** इस शब्द में उसी अन्तरतम के नियम से **अ उ** के स्थान पर **'ओ'** गुण होकर **'परोपकार'** यह रूप बना।

परिभाषा २—जब तक किसी अक्षर के साथ त् न लगा हो तब तक जो नियम ह्रस्व पर लगेंगे वही दीर्घ पर लगेंगे जैसे गुण के नियम में 'अ के इक् होने पर' ऐसा कहा गया है इस लिये 'आ से इक् परे' होने में भी यही नियम लगेगा। हां यदि अत् से इक् परे होने पर ऐसा कहते तो गुण का नियम आ से इक् परे होने पर न लगता।

निचोड़

अ + ऋ = अर्	अ + इ = ए	अ + उ = ओ
आ + ऋ = अर्	आ + इ = ए	अ + ऊ = ओ
अ + ऋ = अर्	अ + ई = ए	आ + उ = ओ
आ + ऋ = अर्	आ + ई = ए	आ + ऊ = ओ

वृद्धि

संज्ञा वृद्धि आ और ऐच् को अर्थात् आ ऐ औ को **वृद्धि** कहते हैं।

नियम २—अ से एच् परे होने पर **वृद्धि**।

अ + ए = ऐ, अ + ऐ = ऐ, अ + ओ = औ, अ + औ = औ। जैसे लोक + एषणा इस अवस्था में लोक शब्द के 'क' वाले अ से परे

एषणा शब्द का ए है, इसलिये अन्तरतम के नियम से अ + ए मिलकर ऐ बनगया अर्थात् अ से परे ए होने पर वृद्धि (आ ऐ औ) में से जो अक्षर इन दोनों अक्षरों (अ + ए) से सब से अधिक मेल खाता था, वह दोनों के स्थान में हो गया, इसलिये 'लोकैषणा' यह रूप हुआ। इसी प्रकार 'ब्राह्मण + ओदन' इस शब्द में 'अ + ओ' मिलकर 'औ' वृद्धि हुई और 'ब्राह्मणौदन' शब्द बनगया। इसी प्रकार अ + ऐ मिलकर ऐ होने से परम + ऐश्वर्य = परमैश्वर्य्य बना। इसी प्रकार सत्य + औषधालय मिलकर सत्यौषधालय हुआ।

निचोड़

अ + ए = ऐ	आ + ऐ = ऐ	
अ + ऐ = ऐ	आ + ए = ऐ	
अ + ओ = औ	आ + ओ = औ	परिभाषा २
अ + औ = औ	आ + औ = औ	

सवर्ण दीर्घ

नियम ३-किन्हीं दो सवर्ण स्वरों के स्थान पर उनकी जाति का दीर्घ स्वर हो जाता है। सरल भाषा में कहें तो-कोई दो सवर्ण मिलकर एक सवर्ण दीर्घ बनाते हैं। जैसे सत्य + असत्य इनमें सत्य का अन्तिम अ और असत्य का आदिम अ समीप है और वे सवर्ण हैं उन दोनों के स्थान पर दीर्घ आ होगा। तब बनेगा सत्यासत्य। इसी प्रकार परम + आनन्द इसमें 'म' का 'अ' और 'आनन्द' का 'आ' सवर्ण हैं, इनमें से आ शेष रह जावेगा और 'परमानन्द' यह रूप बनेगा।

इस नियम में दो शब्द हैं-इनमें से एक नया है अर्थात् 'सवर्ण'। सवर्ण का अर्थ है समान, एक जैसा, अर्थात् उसी जाति का; जैसे 'अ' और 'आ' एक ही जाति के हैं, इसलिये ये दोनों सवर्ण कहलायेंगे। इसी प्रकार 'इ, ई' 'उ, ऊ' भी हैं इनमें 'आ', 'अ' का, 'ऊ' 'उ' का, 'ई' 'इ' का सवर्ण

दीर्घ है क्योंकि वह उसी जाति का है। इसी प्रकार 'आ' और 'आ' भी परस्पर सवर्ण हैं-

हम यहां फिर याद दिलाते हैं कि परम में 'म' एक नहीं दो अक्षर हैं अर्थात् 'म्+अ'।

निचोड़

अ + आ = आ	इ + इ = ई	उ + उ = ऊ
आ + अ = आ	ई + इ = ई	ऊ + उ = ऊ
अ + आ = आ	इ + ई = ई	उ + ऊ = ऊ
आ + आ = आ	ई + ई = ई	ऊ + ऊ = ऊ

यण् विधि

इस पाठ में हम प्रत्याहारों से काम लेंगे इसलिये पढ़ने वालों को एक बार प्रत्याहारों का पाठ फिर पढ़ लेना चाहिये।

नियम ४—'इक्' (इ, उ, ऋ, लृ) के स्थान में क्रम से 'यण्' (य्, व्, र्, ल्) होता है, 'अच्' (स्वर) परे होने पर अर्थात् यदि 'इक्' से 'अच्' परे आये तो 'इक्' के स्थान में 'यण्' हो जाता है-जैसे 'इ' के स्थान में 'य्' 'उ' के स्थान में 'व्' 'ऋ' के स्थान में 'र्', 'लृ' के स्थान में 'ल्' हो जाता है।

इति + आदि = इत्यादि, विधु + आलोक = विध्वालोक, पितृ + आज्ञा = पित्राज्ञा।

'अयादि विधि'

नियम ५—इस में फिर प्रत्याहारों से काम लिया गया है। (एच्) के स्थान में क्रम से 'अय्', 'अव्', 'आय्' 'आव्' होते हैं 'अच्' परे होने पर जैसे ने + अति = नयति, भो + अति = भवति, नै + अक = नायक, पी + अक = पावक 'एच्' = ए, ओ, ऐ, औ।

प्रकरण २

नामिक

यहां व्याकरण का दूसरा भाग आरंभ होता है।

इस भाग को बड़े ध्यान से पढ़ना चाहिये-क्योंकि इसके पढ़ते ही पाणिनीय अष्टाध्यायी का पढ़ना अति सुगम हो जावेगा। इस बात को हम इस अध्याय के अन्त में भली प्रकार दर्शायेंगे।

संसार में किसी भी नाम की सात अवस्थाएं हो सकती हैं, और यदि सम्बोधन को भी मिलालें तो आठ भी हो सकती हैं। जैसे 'राम' इस शब्द को 'राम जाता है', इस वाक्य में 'राम' यह अवस्था है; 'राम को देखो' इस वाक्य में 'राम को' यह अवस्था है; 'कृष्ण ने राम से तलवार की चोट बचाली' इस वाक्य में 'राम से' यह अवस्था है; 'मैं राम के लिये चार फल लाया' इस वाक्य में 'राम के लिये' यह अवस्था है; 'राम से बच कर खड़े रहो' इस वाक्य में 'राम से' यह अवस्था है। 'राम की पुस्तक' इस वाक्य में 'राम की' यह अवस्था है; 'राम पर फल बरस रहे हैं' इस वाक्य में 'राम पर' यह अवस्था है-इस प्रकार यह सात अवस्थायें हैं। इनमें 'हे राम ! मेरी प्रार्थना सुनो' यह आठवीं सम्बोधन की अवस्था मिलाकर आठ अवस्थाएं हुईं। इस आठवीं के विषय में हम अध्याय के अन्त में लिखेंगे। अभी हमें केवल सात ही से काम है। इनमें से प्रत्येक अवस्था को संस्कृत में विभक्ति कहते हैं। प्रत्येक विभक्ति के संख्या के अनुसार ३ वचन होते हैं। आर्य्य भाषा में केवल दो वचन हैं, एक वचन तथा बहुवचन। जैसे राम जाता है, राम जाते हैं, किन्तु संस्कृत में द्विवचन और होता है। इस प्रकार इन २१ अवस्थाओं को बनाने के लिये

संस्कृत में शब्दों से परे जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उनको पाणिनि महाराज ने यों निचोड़कर रक्खा है :-

विभक्ति वचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुँ	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङसिँ	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्
सम्बोधन प्रथमा	सुँ	औ	जस्

विद्यार्थियों ने वर्णमाला में ही पढ़ा होगा कि क-वर्ग, च-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग, प-वर्ग, इन पांचों वर्गों को क्रमशः कु चु टु तु पु भी कहते हैं। हम व्याकरण में इन्हीं शब्दों का व्यवहार करेंगे।

कुछ प्रारम्भिक नियम।

ल श कु उड़ जाते हैं, शुरु में जब ये आते हैं।

चु टु भी खोये जाते हैं। अनुनासिक भग जाते हैं।

हल् जब अन्त में आते हैं, फिर नहीं मुंह दिखलाते हैं।

स् जब अन्त में आता है, दो बिन्दी (विसर्ग) हो जाता है।

तु स् म् का माथा ठण्डा, इन पै चले न हल् का डण्डा।

अनुनासिकँ इस चिह्न को कहते हैं।

theAryasamaj.org

अब हम राम शब्द के रूप दिखलाते हैं। यह एक अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द है।

राम सुँ इस अवस्था में हम ऊपर कह आये हैं कि अनुनासिक भग जाते हैं इसलिये **सुँ** में से **उँ** निकलकर **रामस्** यह अवस्था हुई। फिर हम ऊपर कह आये हैं कि स् जब अन्त में आता है दो बिन्दी अर्थात् विसर्ग हो जाता है। इसलिये इस नियम से **रामः** यह अवस्था हुई।

प्रक्रिया का सार।

राम सुँ राम स् रामः

सुँ के पश्चात् औ है, इसमें **राम औ** इस अवस्था में सन्धि के नियमानुसार वृद्धि होकर **रामौ, राम जस्,** इस अवस्था में चु टू भी खोए जाते हैं। राम अस् इस अवस्था में सन्धि के नियमानुसार राम के म में रहने वाले अ और अस् के अ का मिलाकर एक दीर्घ **आ** हो गया तथा पहिले कहे नियम के अनुसार स् के स्थान में विसर्ग होकर **रामाः**।

राम जस् राम अस् रामास् रामाः

राम अम् इस अवस्था में अम् परे होने पर अम् के अ के स्थान में अम् के अ से पहिला अक्षर हो जाता है[1]-यह नियम लगा। इसे पूर्वरूप का नियम कहते हैं।

रामम्

राम औ में फिर पहिले की तरह रामौ।

राम शस् इस अवस्था में 'ल श कु उड़ जाते हैं' इस नियम से

राम अस् फिर सन्धि के नियमानुसार सवर्णदीर्घ होकर

१. अमि पूर्वः ६-१-१०४

रामास्	फिर इस अवस्था में दीर्घ से परे शस् के स् का न (केवल पुंल्लिग में)[१] यह नियम लगा।
रामान्	
राम टा	अ से परे **टा** के स्थान में **इन्, ङसि** के स्थान में **आत्, ङस्** के स्थान में **स्य**[२]।
राम इन	गुण का नियम[३] लगा
रामेन	इस अवस्था में र ष से परे न् का ण[४]
रामेण	
राम भ्याम्	यञ् (प्रत्याहार हयवरट् के य से झभञ् के ञ् तक) परे होने पर अ का दीर्घ[५]।
रामाभ्याम्	
राम भिस्	अ से परे भिस् का ऐस्[६]
राम ऐस्	वृद्धि का नियम
रामैस्	स् की अन्त में विसर्ग
रामैः	
राम ङे	अ से परे ङे. का य[७]
राम य	यञ् परे होने पर अ का दीर्घ[८]

---

१. तस्माच्छसो नः पुंसि ६-१-१००
२. टाङसिङसामि नात्स्याः अ० ७-१-१२
३. आद्गुणः ६-१-८५
४. रषाभ्यां नो णः समानपदे अ० ८-४-१
५. सुपि च अ० ७-३-१०२
६. अतोभिस् ऐस् अ० ७-१-१२
७. ङेर्यः अ० ७-१-१३
८. सुपि च। अ० ७-३-१०२

thearyasamaj.org

रामाय	
रामाभ्याम्	पहिले की तरह
राम भ्यस्	बहुवचन में झल् प्रत्याहार (झभञ् के झ से हल् के ल् तक) परे होने पर अ का ए, स् की विसर्ग[१] ।
रामेभ्य:	
राम ङसिँ	अ से परे ङसि का आत्
राम आत्	सवर्ण दीर्घ
रामात्	
रामाभ्याम्	पहिले की तरह
रामेभ्य:	पहिले की तरह
राम ङःस्	अ से परे ङ स् का स्य
रामस्य	
राम ओस्	ओस् परे होने पर अ के स्थान में ए[२],
रामे ओस्	अयादि विधि[३] संधि नियम ५ फिर स् का विसर्ग
रामयो:	
राम आम्	ह्रस्व नदी आप से परे आम् का नाम[४] (नदी आप की व्याख्या आगे करेंगे)
राम नाम्	नाम् परे होने पर ह्रस्व का दीर्घ[५]

१. बहुवचने झल्येत् । ७-३-१०३
२. ओसि च,७-३-१०४
३. एङोऽयवायावः । ६-१-७६
४. ह्रस्वनद्यापोनुट् ७-१-५४
५. नामि ६-४-३

thearyasamaj.org

रामा नाम्	र ष से परे न का ण
रामाणाम्	
राम ङि	'ल श कु उड़ जाते हैं'
रामे	
रामयोः	पहिले की तरह
राम सु	बहुवचन में झल् परे होने पर अ का ए
रामे सु	इस अवस्था में इण् और कु (क वर्ग) से परे स का ष (यदि वह स आदेश या प्रत्यय का हो)
रामेषु	(इण् प्रत्याहार सदा अ इ उ ण् की इ से लण् के ण तक लिया जाता है। इसमें इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, ह, य, व, र, ल इतने अक्षर आते हैं।)

रूपमाला

प्र०	रामः	रामौ	रामाः
द्वि०	रामम्	रामौ	रामान्
तृ०	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
च०	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पं०	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
ष०	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
स०	रामे	रामयोः	रामेषु

इसी प्रकार देव, ग्राम, देश, इन्द्र, ईश्वर, सुरेश आदि।

thearyasamaj.org

अकारान्त नपुंसक-लिंग धन शब्द

धन सुँ	अकारान्त नपुंसक-लिंग में सुँ और **अम्** के स्थान में अम्[1] ।
धन अम्	अम् परे होने पर अम् के० (देखो रामम्)
धनम्	
धन औ	नपुंसकलिंग में औ के स्थान में शी[2]
धन शी	'ल श कु उड़ जाते हैं[3]'
धन ई	गुण
धने	

अब हम यहां दो शब्दों का भेद समझाना चाहते हैं एक **आदेश** दूसरा **आगम** । आदेश उस अक्षरसमुदाय को कहते हैं जो किसी दूसरे अक्षर वा अक्षरसमुदाय के स्थान में आता है जैसे ङे के स्थान में य, ङसिं के स्थान में आत्, ङस् के स्थान में स्य इत्यादि किन्तु आगम उसको कहते हैं जो अक्षर वा अक्षरसमुदाय किसी अक्षर वा अक्षरसमुदाय में जोड़ दिया जाता है ।

उपधा	अन्तिम अक्षर से पहिले अक्षर को **'उपधा'**[4] कहते हैं जैसे राम शब्द की उपधा म्, राजन्, शब्द की उपधा अ, योगिन् शब्द की उपधा इ आदि ।
धन जस्	नपुंसक लिंग में जस् शस् के स्थान में शि[5] । इस (शि को ही सर्वनाम स्थान[6]) कहते हैं ।

१. नपुंसकाच्च,७-१-१९
२. जसः शी ७-१-१७
३. लशक्व तद्धिते । १-३-८
४. अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा १-१-६४
५. जश्शसोशिः७-१-१७
६. शि सर्वनामस्थानम् १-१-४१

thearyasamaj.org

धन इ — झलन्त (जिसके अन्त में झल् प्रत्याहार में से कोई अक्षर हो) और अजन्त नपुंसकलिंग को नुँम्[1] आगम सर्वनाम स्थान परे होने पर। म् निकल गया (हल जब अन्त में आते हैं फिर नहीं मुंह दिखलाते है) उं अनुनासिक होने से निकल गया। शेष न् धन में जोड़ दिया गया।

धनन् इ — नकारान्त की उपधा को दीर्घ सर्व्वनामस्थान परे होने पर धनन् नकारान्त है, उसकी उपधा (अन्तिम से पहिले अक्षर) को दीर्घ हुआ क्योंकि उस से परे सर्वनामस्थान शि पड़ा है[2]।

धनानि — ऊपर के नियमानुसार अम् औ शस् में भी क्रमशः धनम् धने धनानि रूप हुए। इनसे परे राम की तरह।

रूपमाला

प्र०	धनम्	धने	धनानि
द्वि०	धनम्	धने	धनानि
तृ०	धनेन	धनाभ्याम्	धनैः
च०	धनाय	धनाभ्याम्	धनेभ्यः
प०	धनात्	धनाभ्याम्	धनेभ्यः
ष०	धनस्य	धनयोः	धनानाम्
स०	धने	धनयोः	धनेषु

इसी प्रकार-वन, फल, नगर, जल, कमल, दुग्ध, शरीर आदि।

---

१. नपुंसकस्य झल च। ७-१-७२ २. सर्वनामस्थानेऽसम्बुद्धौ ६-४-८

thearyasamaj.org

आकारान्त स्त्रीलिंग रामा शब्द

अकारान्त शब्द स्त्रीलिंग में आप् या ङीप् लगकर आकारान्त या ईकारान्त हो जाते हैं। इस कारण अकारान्त के स्त्रीलिंग के रूप नहीं होते। जैसे राम शब्द अकारान्त है स्त्रीलिंग में इसमें आगे टाप् प्रत्यय लगकर राम + आप् (हल् होने के कारण प् का लोप) दीर्घ रामा शब्द बना।

रामा सुँ हल् ङी आप् से परे सुँ का लोप हो जाता है[1]।

रामा	
रामा औ	आ प् से परे औ के स्थान में शी[2]
रामा ई	(शी में से लशकु० के अनुसार श जाकर ई शेष रहा) गुण
रामे	
रामा जस्	चु टू भी खोए जाते हैं[3]
रामा अस्	
रामाः	
रामा अम्	अम् परे...
रामाम्	
राम औ	(औ के स्थान में शी)
रामे	
रामा शस्	

---

१. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ६-१-६६

२. औङ आपः ७-१-१८ ३. न विभक्तौ तुस्माः। १-३-४

thearyasamaj.org

रामा अस्	
रामाः	
रामा टा	टा और ओस् परे होने पर आप् के स्थान में ए[१] ।
रामे आ	ए के स्थान में अय् (संधि ५)
रामया	
रामाभ्याम्	
रामा भिस्	'स् जब अन्त में०'
रामाभिः	
रामा ङे	ङ-लोप
रामा ए	ङित् विभक्तियों में आप् से परे याट् आगम[२] (जिन विभक्तियों में से ङ निकल जाय उन्हें ङित् कहते हैं । इसी प्रकार जिनमें ट् निकले उन्हें टित् । जिनमें से प् निकले उन्हें पित् । जिन में से श् निकले शित् इत्यादि)
रामा या ए	आ और ए की वृद्धि होकर[३]
रामायै	रामाभ्याम् रामाभ्यः
रामा ङसिं	लशकु-इं अनुनासिक जाते रहे-ङित् होने से याट्
रामा या अस्	सवर्ण दीर्घ तथा स् के स्थान में विसर्ग
रामायाः	रामाभ्याम् रामाभ्यः
रामा ङस्	लशकु० से ङ्लोप पूर्ववत्

१. आङि चापः । ७-३-१०५ २. याडापः । ७-३-११३
३. वृद्धिरेचि । ६-१-८६

रामा या अस्

रामाया:

रामा ओस् ओस् परे होने पर आप् के स्थान में ए

रामे ओस् ए के स्थान में अय् (सन्धि ५)

रामयो:

रामा आम् ह्रस्व नदी आप् से परे आम् का नाम[१]

रामानाम् र से परे न का ण[२]

रामाणाम्

रामा ङि ङित् विभक्तियों में याट्।

रामा याट् इ

रामा या इ आप् नदी नी से परे ङि के स्थान में आम्[३]

रामा या आम् सवर्ण दीर्घ

रामायाम्

रामयो: पूर्ववत्

रामासु

रूपमाला

प्र०	रामा	रामे	रामा:
द्वि०	रामाम्	रामे	रामा:
तृ०	रामया	रामाभ्याम्	रामाभि:

१. ह्रस्वनद्यापोनुट्। ७-१-५४ २. रषाभ्यां नो ण: समानपदे ८-४-१

३. ङेराम् नद्यां नीभ्य:, ७-३-११६

thearyasamaj.org

च०	रामायै	रामाभ्याम्	रामाभ्यः
पं०	रामायाः	रामाभ्याम्	रामाभ्यः
ष०	रामायाः	रामयोः	रामाणाम्
स०	रामायाम्	रामयोः	रामासु

इसी प्रकार-माला, लता, रमा, गङ्गा, यमुना, शाला, कक्षा आदि ।

इकरान्त पुंल्लिग हरि शब्द

हरि सुँ	'अनुनासिक भग जाते हैं'
हरि स्	विसर्ग
हरिः	
हरि औ	अक् से परे प्रथमा और द्वितीया में पूर्व्व-सवर्ण दीर्घ[१] अर्थात् औ से पूर्व्व (पहिले) जो अक्षर हो उसका सवर्ण दीर्घ हो जाता है । यहां औ से पहिला अक्षर इ है उसका सवर्ण दीर्घ ई, इ और औ दोनों के स्थान में ई होकर हरी यह रूप बना ।
हरी	
हरि जस्	
हरि अस्	ह्रस्व के स्थान में गुण जस् परे होने पर[२] इ के स्थान में ए गुण होकर
हरे अस्	ए के स्थान में अय्[३]; विसर्ग
हरयः	

१. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । ६-१-९९ २. जसि च । ७-३-१०९
३. एचोऽयवायावः । ६-१-७६

हरी	
हरि जस्	
हरि अस्	ह्रस्व के स्थान में गुण जस् परे होने पर[१] इ के स्थान में ए गुण होकर
हरे अस्	ए के स्थान में अय्[२]; विसर्ग
हरय:	
हरि अम्	
अम् परे०	
हरिम्	
हरि औ	पूर्व्व-सवर्ण दीर्घ
हरी	
हरि शस्	
हरि अस्	पूर्व्व-सवर्ण दीर्घ
हरी स्	(दीर्घ से परे शस्०[३])
हरीन्	ह्रस्व इ उ, का नाम घि[४]
हरि टा	घि से परे टा के स्थान में ना[५]
हरि ना	र ष से परे न का ण
हरिणा	हरिभ्याम् हरिभि:

१. जसि च। ७-३-१०९
२. एचोऽयवायावः। ६-१-७६
३. तस्माच्छसो नः पुंसि। ६-१-१००
४. शेषोघ्यसखि। १-४-७
५. आङो नास्त्रियाम्। ७-३-११९

thearyasamaj.org

हरि ङे	ङित् विभक्तियों में घि के स्थान में गुण[१]
हरे ए	इ के स्थान में ए होकर ए के स्थान में अय्
हरये	हरिभ्याम् हरिभ्यः
हरि ङसि	ङ् इ जाकर
हरि अस्	ङित् होने के कारण गुण
हरे अस्	एङ् (ए ओ) से ङसि ङस् विभक्ति परे हो तो पूर्वरूप
हरेः	हरिभ्याम् हरिभ्यः
हरि ङस्	
हरि अस्	
हरे अस्	पूर्व्वरूप, विसर्ग
हरेः	
हरि ओस्	इ के स्थान में य् (संधि २)
हर् य् ओस्	हर्योः
हरि आम्	ह्रस्व नदी आप् से परे आम् को नाम्[३]
हरिनाम्	नाम् परे होने पर ह्रस्व का दीर्घ र से परे न का ण
हरीणाम्	
हरि ङि	इ उ से परे ङि को औ[४]; घि को अ[५]
हर औ	अ + औ वृद्धि औ होकर[६]
हरौ	
हरि ओस्	पूर्व्ववत्
हर्योः	
हरि सु	इण् और क वर्ग से परे स् का ष्[७]
हरिषु	

---

१ घेर्ङिति ७-३-१११
२. इको यणचि ६-१-७५
३ ह्रस्व नद्यापोनुट् । ७-१-५४
४. इदुद्भ्याम् औत् ७-३-११७
५. अच्च घेः । ७-३-११८
६. वृद्धिरेचि । ६-१-८६
७. आदेशप्रत्यययोः । ८-३-५९

thearyasamaj.org

रूपमाला

प्र०	हरिः	हरी	हरयः
द्वि०	हरिम्	हरी	हरीन्
तृ०	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
च०	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पं०	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
ष०	हरेः	हर्य्योः	हरीणाम्
स०	हरौ	हर्य्योः	हरिषु

इसी प्रकार-कवि, रवि, विधि, सन्धि, ध्वनि, कपि, गिरि आदि

इकारान्त नपुंसक लिंग वारि शब्द

वारि सुँ	नपुंसक लिंग में सुँ और अम् का लोप[1]
वारि	
वारि औ	नपुंसक लिंग में औ के स्थान में शी[2]
वारि शी	श् जाता रहा
वारि ई	इगन्त (जिस के अन्त में इक् अर्थात् इ उ ऋ ऌ में से कोई अक्षर हो) नपुंसक लिंग में अच् परे होने पर नुँम् आगम[3]; ऊं अनुनासिक म् हल जाते हैं न् शेष रहा
वारिन् ई	र से परे न का ण
वारिणी	

१. स्वमोर्नपुंसकात् । ७-१-२३ २. नपुंसकाच्च । ७-१-१९
३. इकोऽचि विभक्तौ । ७-१-७३

thearyasamaj.org

वारि जस्	नपुंसक लिङ्ग में जस् शस् के स्थान में शि[1] ।
वारि शि	शि का श् लोप । इ शेष
वारि इ	झलन्त, अजन्त नपुंसक लिंग को नुम् आगम, सर्व्वनाम स्थान[2] (शि) परे होने पर
वारिन् इ	नकारान्त की उपधा (अन्तिम से पहिला अक्षर) को दीर्घ सर्व्वनाम स्थान परे होने पर; वारिन् इतना भाग नकारान्त हैं, उसकी उपधा इ है, दीर्घ होकर न का ण होकर[3]
वारीणि	द्वितीया विभक्ति में भी इसी प्रकार रूप बनेंगे ।
वारि टा	चुटू से ट् निकल गया
वारि आ	इगन्त नपुंसक लिंग को नुँम् आगम अच् परे होने पर
वारिन् आ	र से परे न का ण
वारिणा	वारिभ्याम् वारिभिः
वारि ङे	ल श कु
वारि ए	इगन्त; न का ण
वारिणे	वारिभ्याम् वारिभ्यः
वारि ङसिँ	ल श कु से ङ् इँ लोप; नुँम् आगम; उँ व म् का लोप; न का ण;
वारिन् अस्	विसर्ग
वारिणः	वारिभ्याम् वारिभ्यः
वारि ङस्	ल श कु... से ङ् लोप; नुँम् आगम; ऊं व म् का लोप; न का ण; विसर्ग ।

---

१. जश्शसोःशि । ७-१-२०

२. नपुंसकस्य झलचः । ७-१-७२

३. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६-४-८

theaaryasamaj.org

वारिन् अस्

वारिण:

वारि ओस् इगन्त....

वारिन् ओस्

वारिणो:

वारि आम् ह्रस्व को दी०, नाम् परे०, न का ण

वारिणाम्

वारिण ङि लश कु० इगन्त०

वारिन् इ

वारिणि,

वारिणो:

वारिसु इण् और कवर्ग...

वारिषु

रूपमाला

प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वि०	वारि	वारिणी	वारीणि
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभि:
च०	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्य:
पं०	वारिण:	वारिभ्याम्	वारिभ्य:
ष०	वारिण:	वारिणो:	वारिणाम्
स०	वारिणि	वारिणो:	वारिषु

thearyasamaj.org

गौरी

कुछ स्त्रीलिंग शब्द आप् लगकर बनते हैं जिसका वर्णन रामा शब्द में कर आये हैं। इसी प्रकार गौरी, कुमारी आदि कुछ शब्द ङी प्रत्यय से बनते हैं।

गौरी सुँ	उ की इत्संज्ञा और लोप होनेपर हल् ङी आप् से परे सुँ (अपृक्त मात्रा का) लोप[1]
गौरी	
गौरी औ	दीर्घ से परे औ, जस् में पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता[2] इक् के स्थान में यण् अच् परे होने पर सन्धि।
गौर्यौ	
गौरी जस्	चुटू....
गौरी अस्	इक् के स्थान में यण्
गौर्य्यः	य् के स्थान में दो य्[3]
गौरी अम्	अम् परे...
गौरीम्	
गौरी औ	इक्...
गौर्यौ	
गौरी शस्	ल श कु...
गौरी अस्	अक् से परे प्रथमा (देखो हरी[4]) हरि औ वाला नियम

१. हल्ङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्। ६-१-६६
२. दीर्घाज्जसि च। ६-१-१०२ ३. अचो रहाभ्यां द्वे। ८-४-४५
४. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। ६-१-९९

theayasamaj.org

गौरी आ	इक् के स्थान में यण्
गौर्या	गौरीभ्याम् गौरीभि:
	दीर्घ ई ऊ स्त्रीलिंग को **नदी** कहते हैं[१]
गौरी ङे.	लशकु....
गौरी ए	'नदी से परे ङित् (जिस में से ङ् निकल जाय विभक्तियों को आट् आगम्[२])'
गौरी आ + ए	इक् के स्थान पर यण्, आ ए मिलकर ऐ
गौर्यै	गौरीभ्याम् गौरीभ्य:
गौरी ङसिं	ङ् इ निकल गए
गौरी अस्	नदी से परे...
गौरी आ + अस्	इक् के स्थान में आ + अ = आ
गौर्या:	गौरीभ्याम् गौरीभ्य:
गौरी ङ.स्	
गौरी अस्	नदी से परे...
गौरी आ + अस्	
गौर्या:	
गौरी ओस्	इक् के...
गौर्यो:	
गौरी आम्	ह्रस्व नदी[३]...न का ण

१. यू स्त्र्याख्यौ नदी। १-४-३ २. आण्नद्या: ७-३-११२
३. ह्रस्वनद्यापो नुट्। ७-१-५४

thearyasamaj.org

गौरीणाम्

गौरी ङि

गौरी इ नदी से परे...

गौरी आ इ आप नदी नी से परे ङि के स्थान में आम्।

गौरी आ आम् यणादेश

गौर्य्याम् गौर्यो:

गौरीसु इण् और कवर्ग...

गौरीषु

हे गौरी सुँ प्रथमा के एकवचन के समान लोप।

हे गौरी: ई को ह्रस्व[1]

हे गौरि

रूपमाला

प्र०	गौरी	गौर्यौ	गौर्य:
द्वि०	गौरीम्	गौर्यौ	गौरी:
तृ०	गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभि:
च०	गौर्यै	गौरीभ्याम्	गौरीभ्य:
प०	गौर्या:	गौरीभ्याम्	गौरीभ्य:
ष०	गौर्या:	गौर्यो:	गौरीणाम्
स०	गौर्याम्	गौर्यो:	गौरीषु
	हे गौरि	हे गौर्यौ	हे गौर्य:

इसी प्रकार- कुमारी, देवी, मालती, सरस्वती, दशमी, मही, पृथ्वी आदि।

---

१. अम्बार्थ नद्योर्ह्रस्वः। ७-३-१०७

theayasamaj.org

वाच् हलन्त स्त्रीलिंग

वाच् सुँ	हल् ङी आप् से परे सुँ का लोप
बाच्	सु औ जस् आदि के लगाने से शब्द पद कहलाते हैं। पद का अन्त पदान्त कहलाता है, चु (चवर्ग) के स्थान में कु (कवर्ग) झल् परे होने पर और पदान्त में[1]।
वाक्	झल् के स्थान में जश्, झश् परे होने पर और पदान्त में[2] (शब्द के अन्त में) विकल्प से[3] अर्थात् वाक् वाग् दोनों रूप बनेंगे।
वाक्-वाग्	वाचौ
वाच् जस्	चुटू...; विसर्ग

वाच् अस् = वाचः

वाचम्	वाचौ	वाचः

वाच् टा

वाच् आ

वाचा

वाच् भ्याम्	चवर्ग का कवर्ग झल् परे...; झल् के स्थान में जश् झश् परे होने...; (भ झल् तथा झश् दोनों प्रत्याहारों में है।)

वाक् भ्याम्-वाग् भ्याम्		वाग्भिः
वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः

---

१. चोः कुः ८-१-३०
२. झलां जशोऽन्ते ८-१-३९
३. वावसाने ८-४-५५

thealyasamaj.org

वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
वाचः	वाचोः	वाचाम्
वाचि	वाचोः	
वाच् सु	चवर्ग के स्थान	
वाक् सु	इण और कवर्ग से...	
वाक् षु वाक्षु	क् ष को मिलाकर ही क्ष इस प्रकार लिखते हैं।	

रूपमाला

प्र०	वाक् वाग्	वाचौ	वाचः
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	वाचोः	वाक्षु

इसी प्रकार-त्वक्, स्रक् (= स्रज्), सम्यक् आदि।

मति ह्रस्वइकारान्त स्त्रीलिंग

मति शब्द में वही नियम लगते हैं जो हरि में लगते हैं। जहां कुछ विशेषता होगी, बता दी जायगी।

मतिः	मती	मतयः
मतिम्	मती	मतीः यहां स्त्रीलिंग होने के कारण स् का न् नहीं हुआ (देखो गौरीः)

thearyasamaj.org

मति टा स्त्रीलिंग में टा का ना नहीं होता

मति आ यणादेश से मत्या

मत्या	मतिभ्याम्	मतिभि:
मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्य:
मते:	मतिभ्याम्	मतिभ्य:
मते:	मत्यो:	मतीनाम्
मतौ	मत्यो:	मतिषु

इस शब्द में ङित् विभक्तियों में नदी के नियम भी लगते हैं मति आ ए (देखो गौर्य:)

मत्यै

मति ङसि

मति आ अस्

मत्या:

मति ङस्

मत्या:

मति ङि

मति आ आम्

मत्याम् इस प्रकार ङित् विभक्तियों में दो-दो रूप बनते हैं।

thearyasamaj.org

रूपमाला

प्र०	मतिः	मती	मतयः
द्वि०	मतिम्	मती	मतीः
तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च०	मतये-मत्यै	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पं०	मतेः-मत्याः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
ष०	मतेः-मत्याः	मत्योः	मतीनाम्
स०	मत्याम्-मतौ	मत्योः	मतिषु

इसी प्रकार-वेदि, रुचि, स्तुति, गति, नीति, वृष्टि, प्रीति आदि ।

नामिक पढ़ने पर विद्यार्थी मूल अष्टाध्यायी के अर्थ भली प्रकार समझ सकते हैं, केवल उनको व्याकरण में विभक्तियां और अर्थ बताने की आवश्यकता है । उदाहरण के लिये व्याकरण में षष्ठी विभक्ति का अर्थ है "के स्थान पर" तथा सप्तमी का अर्थ "परे होने पर" । अब **'इको यणचि'** इस सूत्र को लीजिये । इसके तीन पद हैं ।

इकः (षष्ठी) यण् (प्रथमा) अचि (सप्तमी)

ऊपर कहे नियमों से सूत्र का अर्थ हुआ-इक् के स्थान में यण् होता है अच् परे होने पर । इस विषय की और अधिक व्याख्या सूत्रार्थाध्याय में करेंगे ।

thearyasamaj.org

प्रकरण ३

आख्यातिक

अब व्याकरण का तीसरा भाग आरम्भ होता है। संसार में छोटे से छोटा वाक्य दो पदों से मिलाकर बनता है; एक द्रव्यपद दूसरा क्रियापद। जैसे 'घोड़ा दौड़ता है' इस वाक्य में **घोड़ा** द्रव्यपद है तथा **दौड़ता है** क्रियापद है। इनमें से द्रव्यपद के रूपों की व्याख्या **नामिक** में हो चुकी। अब क्रियापद के रूपों की व्याख्या इस अध्याय में होगी। इस अध्याय में सबसे महत्त्व की वस्तु **धातु** है। अगले अध्यायों में हम दिखायेंगे कि व्यवहार की सुगमता के लिये संस्कृत वैय्याकरणों ने सब शब्दों की उत्पत्ति इसी धातु से मानी है। इसलिए धातु बड़े महत्त्व की चीज है।

लक्षण-क्रियाओं के निचोड़ को धातु कहते हैं। **जाता है, जाते हैं, जाते हो, जाता हूं, जाएगा, जायेंगे, जाओगे, जाऊंगा, जाना** इत्यादि सभी पदों में **'जा'** यह भाग पाया जाता है। यदि हम इसे इस सबमें से निचोड़कर अलग करलें तो यह **'जा'** धातु कहलाई और शेष **'ता'** है आदि प्रत्यय कहलाएंगे। संस्कृत में इसी प्रकार के धातुओं से कौन-कौन से प्रत्यय लगाये जाते हैं तथा फिर उनके किन-किन नियमों से क्या-क्या रूप होते हैं, यह इस अध्याय में बतायेंगे।

प्रवृत्ति-प्रत्येक धातु की ५ प्रवृत्तियें होती हैं, **भूत, वर्तमान, भविष्यत्, सम्भावना** और **आज्ञा**। फिर इन में प्रत्येक के कुछ भेद हैं उन्हें व्याकरण में **लकारों** के नाम से कहा गया है।

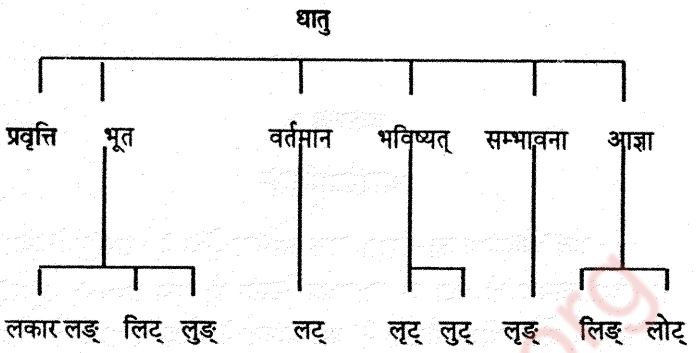

अब इन में से प्रत्येक लकार के रूप बनाने के लिये आगे के दोनों कोठों में किसी एक के अथवा दोनों के प्रत्यय धातुओं से परे लगाए जाते हैं। एक परस्मैपद कहलाते हैं, दूसरे आत्मनेपद।

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुषः वह–वे	तिप्	तस्	झि	त	आताम्	झ
मध्यमपुरुषः तू–तुम	सिप्	थस्	थ	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुषः मैं–हम	मिप्	वस्	मस्	इट्	वहि	महिङ्

नन्द् परस्मैपद

नन्द् धातु एक परस्मैपदी धातु है, इससे लट् आदि लकारों के रूप बनाने के लिये पहिले कोठे (**तिप् तस् झि, सिप् थस् थ, मिप् वस् मस्**) के ९ प्रत्यय लगेंगे। इसी प्रकार जो आत्मनेपदी धातु कहलाती

हैं उनके साथ पिछले ९ **(त आताम् झ, थास् आथाम् ध्वम्, इट् वहि महिङ्)** लगेंगे। कुछ धातुओं के दोनों प्रकार के रूप बनते हैं। उन्हें उभयपदी धातु कहते हैं।

तिङ्—यह एक प्रत्याहार है जिसमें ऊपर लिखे दोनों कोठों के अठारहों प्रत्यय सम्मिलित हैं।

तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्,
त आताम्, झ, थास्, आथाम् ध्वम्, इट् वहि महिङ्।

तिङ्

तिङ् और शित् (वह प्रत्यय जिनमें से श् निकल गया हो) को सार्वधातुक[1] कहते हैं।

शेष प्रत्यय जो धातुओं से होते हैं उन्हें आर्धधातुक कहते हैं।

विकरण

इन्हें भी एक प्रकार के प्रत्यय समझना चाहिये। यह धातु तथा किसी दूसरे प्रत्यय के बीच में बैठते हैं। इनमें विशेषता यह है कि न तो ये धातु का ही भाग समझे जाते हैं और न प्रत्यय का। न तो यह आगम की तरह किसी में जुड़कर मित्र भाव से रहते हैं और न आदेश की तरह किसी के स्थान पर शत्रुभाव से हटाकर बैठते हैं। यह बीच में उदासीन होकर बैठते हैं, इसीलिये हँसी से व्याकरण में संन्यासी कहे जाते हैं। धातुओं से भिन्न-भिन्न प्रकार के ७ विकरण लगाये जाते हैं। उनके आधार पर धातुपाठ + में १० गण हो गये हैं। प्रत्येक गण अपनी आदि की धातु के नाम से विख्यात है। जैसे जिस गण की पहिली धातु भू धातु है वह भ्वादिगण कहलाता है, इसी प्रकार अदादि, जुहोत्यादि इत्यादि।

---

१. तिङ् शित् सार्वधातुकम् ३-४-११३ २. आर्धधातुकं शेषः ३-४-११४

भ्वादिगण में **कर्तृवाच्य** (Active voice) में शप् विकरण। यहां हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि संस्कृत व्याकरण में **कर्तृवाच्य** के रूप ही अधिक कठिन होते हैं, **कर्म्मवाच्य** (Passive voice) के रूप गणों में एक से होते हैं। उनका वर्णन अध्याय के अन्त में करेंगे।

कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य

जो पाठक भाषा-व्याकरण अथवा इङ्गलिश व्याकरण न जानते हों उनके लिये दोनों वाच्यों की व्याख्या कर देना असङ्गत न होगा। इनके लिये **कर्तृ** तथा **कर्म्म** शब्दों की व्याख्या आवश्यक है।

कर्ता- कर्ता किसी क्रिया के करने वाले को कहते हैं। जैसे राम लकड़ी काटता है इस वाक्य में राम कर्ता है क्योंकि वह काटने की क्रिया करने वाला है।

कर्म्म- उसे कहते हैं जिसके प्रति क्रिया की जाय। जैसे राम लकड़ी काटता है इस वावय में लकड़ी कर्म हैं, क्योंकि काटने की क्रिया लकड़ी के प्रति की जाती है, अर्थात् लकड़ी को काटा जाता है।

कर्तृवाच्य- क्रिया के उस प्रकार के प्रयोग को कहते हैं जिसमें कर्ता वाच्य अर्थात् बोलने का लक्ष्य हो, जिसमें **क्रिया कर्ता के पीछे चलती है**। जैसे राम लकड़ी काटता है यह कर्तृवाच्य का रूप है। इसमें काटता है यह क्रिया राम के पीछे चलती है। इस वाक्य का मुख्य उद्देश्य यह

+ धातुपाठ-यह एक पाणिनि मुनि का बनाया ग्रन्थ है जिसमें संस्कृत के धातु अर्थ सहित गणक्रम से दिये हैं। उन्में यह भी लिखा है कि कौन धातु परस्मैपदी कौन आत्मनेपदी और कौन उभयपदी है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक बातें उसमें मालूम होती हैं।

बताना नहीं है कि राम किस पदार्थ को काटता है अपितु इस वाक्य का उद्देश्य यह बताना है कि लकड़ी को काटने वाला राम है। इसलिये राम लकड़ी काटता है यह रूप कर्तृवाच्य कहलाता है।

कर्म्मवाच्य- **कर्मवाच्य क्रिया के उस प्रकार के रूप को कहते हैं जिसमें कर्म्म प्रधान हो।** जैसे राम से लकड़ी काटी जाती है। इस वाक्य का मुख्य उद्देश्य यह बताना नहीं कि काटने की क्रिया करने वाला कौन है, किन्तु यह है कि काटने की क्रिया किसको की जाती है। यही कारण है कि क्रिया ने कर्म्म अर्थात् लकड़ी के पीछे चलकर [हिन्दी भाषा में] अपना लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग कर लिया। इसलिये **कर्म के पीछे चलने के कारण यह रूप कर्मवाच्य कहलाता है।**

यहां तक हमने धातु, प्रवृत्ति, लकार, परस्मैपद, आत्मनेपद, सार्वधातुक, आर्धधातुक, विकरण, कर्तृवाच्य तथा कर्म्मवाच्य इन शब्दों की व्याख्या की है अब हम भ्वादिगण की टुनदि नन्द् धातु के वर्तमान के रूप दिखाएंगे। वर्तमान का लकार लट् है :-

नन्द् लट्

नन्द् तिप्[1]

नन्द् ति — भ्वादिगण में कर्तृवाच्य में सार्वधातुक परे होने पर शप् विकरण[2]

नन्द् शप् ति — श् और प् का लोप

---

१. तिङ्शित् सार्वधातुकम् २. कर्तरि शप् ३-१-६८

नन्द् अ ति

नन्दति

नन्द् तस्

नन्द् अ तस्

नन्दतः नन्द झि झ् के स्थान में अन्त[१] (झ् + इ)

नन्द् अन्ति अ से गुण परे होने पर पररूप पदान्त को छोड़कर[२]

नन्द् शप् अन्ति अर्थात् अ से अ ए ओ परे हो तो अ के स्थान पर जो

नन्द् अ अन्ति परला अक्षर होगा वही हो जायगा किन्तु वह अ पदान्त का न हो।

नन्दन्ति

नन्द् सिप् सार्वधातुक लकारों...

नन्द् शप् सि

नन्द् अ सि

नन्दसि नन्दथः नन्दथ

नन्द् मिप्

नन्द् शप् मि

नन्द् अ मि

नन्द मि अ से यञ् परे होने पर अ का दीर्घ[३]। "यञ्" (य व र ल ञ म ङ ण न झ भ ञ्)

नन्दामि नन्दावः नन्दामः

---

१. झोऽन्तः ७-१-३ २. अतो गुणे ६-१-९७

३. अतोदीर्घोयञि ७-३-१०१

thearyasamaj.org

लृट् (भविष्यत्)

नन्दति	लृ परे होने पर अर्थात् लृङ् लृट्[1] दोनों में स्य विकरण होता है। स्य न तो तिङ् है न शित् ही है इसलिए यह सार्वधातुक नहीं कहला सकता। इसलिए यह आर्ध-धातुक हुआ क्योंकि सार्व-धातुक से शेष प्रत्ययों को आर्धधातुक कहते हैं[2]। वलादि (जिसके आदि में वल् प्रत्याहार हो) आर्धधातुक में इट्[3] आगम ।टित् (जिस से ट् निकल गया हो) आगम पहिले जुड़ते हैं।
नन्द् इस्य ति	इण् कवर्ग...
नन्दिष्यति	नन्दिष्यतः
नन्द् इस्य अन्ति	अ से गुण परे...
नन्दिष्यन्ति	
नन्दिष्यसि	नन्दिष्यथः नन्दिष्यथ
नन्दिष्यामि	नन्दिष्यावः नन्दिष्यामः

लङ् (अनद्यतन भूत)

ऐसा भूतकाल जो आज बीती घटनाओं को न बताता हो किन्तु आज से पूर्व बीती घटनाओं को बताता हो।

नन्द् ति	लुङ् लङ् लृङ् परे होने पर धातु को अट् आगम[4]; टित् आगम पहिले शप् विकरण।

---

१. स्यतासी लृलुटोः ३-१-३३
२. आर्धधातुकं शेषः ३-४-११४
३. आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७-२-३५
४. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६-४-७२

thearyasamaj.org

अनन्द् अ ति	
अनन्दति	ङित् (जिस में से ङ् निकल गया हो जैसे लङ्) लकारों में अन्त की इ का लोप[१]
अनन्दत्	
अनन्दतस्	ङित् लकारों में तस् थस् थ और मिप् के स्थान पर क्रमशः **ताम् तम् त** और **अम्** होते हैं[२] ।
अनन्दताम्	
अनन्दन्ति	ङित् लकारों में इ का०
अनन्दन्त्	पदान्त में संयोग के अन्तिम अक्षर का लोप[३] (संयोग = हल् अक्षरों का मेल)
अनन्दन्	
अनन्दसि	ङित् लकारों में इ०
अनन्दस्	
अनन्दः	
अनन्दथस्	ङित् लकारों में तस्०
अनन्दतम्	
अनन्दथ	ङित् लकारों में तस्०
अनन्दत	
अनन्द मि	ङित् लकारों में मिप्०
अनन्द अम्	अ से गुण परे०[४]

---

१. इतश्च
२. तस्थस्थमिपां-तांतंतामः। ३-४-१०१
३. संयोगान्तस्य लोपः। ८-२-२३
४. अतो गुणे

thearyasamaj.org

अनन्दम्

अनन्द वस् अ से यञ्[1]

अनन्दावस् ङित् लकारों में उत्तमपुरुष में अन्तिम स् का लोप[2]

अनन्दाव

अनन्दाम

रूपमाला

अनन्दत्	अनन्दताम्	अनन्दन्
अनन्दः	अनन्दतम्	अनन्दत
अनन्दम्	अनन्दाव	अनन्दाम

लृङ् (सम्भावना)

यदि वर्षा होती तो खेती बड़ी अच्छी होती ।

अ नन्द् स्य ति लृ परे० (स्य) लुङ् लृङ् (अट् आगम्) वलादि०

अनन्दिष्यति ङित् लकार में अन्तिम इ का लोप

अनन्दिष्यत्

अनन्दिष्य तस्

ङित् लकारों में तस्-

अनन्दिष्यताम् इस प्रकार लृट् तथा लृङ् के नियम मिलने से इसके रूप बन जायेंगे ।

अनन्दिष्यन्

---

१. अतो दीर्घो यञि ७-३-१०१ २. नित्यंङितः ३-४-९९

thearyasamaj.org

रूपमाला

अनन्दिष्यत्	अनन्दिष्यताम्	अनन्दिष्यन्
अनन्दिष्यः	अनन्दिष्यतम्	अनन्दिष्यत
अनन्दिष्यम्	अनन्दिष्याव	अनन्दिष्याम

लोट् आज्ञा

नन्द् ति	शप् विकरण
नन्द् अ ति	
नन्दति	लोट् में इ के स्थान में उ[१]
नन्दतु	
नन्द अतस्	
नन्दतस्	लोट् में ङित् लकारों के नियम भी लगते हैं इसीलिये
नन्दताम्	तस् के स्थान में ताम्
नन्दन्तु	
नन्द सि	लोट् में सि के स्थान में हि[२] और अ से परे उसका लोप[३]
नन्द	नन्द, नन्दतम्, नन्दत (ङित् लकारों के नियम)
नन्द् मि	लोट् में मि के स्थान में नि[४] यञ् होने पर दीर्घ
नन्दानि	
नन्दाव, नन्दाम	ङित् लकार के नियम से स् का लोप

---

१. एरुः = ए: ३-४-८६
२. अतो हेः ६-४-१०५
३. सेर्ह्यपिच्च। ३-४-८७
४. (मेर्निः) ३-४-८९

thearyasamaj.org

लिट् (परोक्ष भूत)

परोक्ष = जो आंखों से न देखी हो

यह लकार आर्धधातुक है इसमें परस्मैपद में तिप् तस् झि के स्थान पर क्रमश: नीचे लिखे कोठों के प्रत्यय होते हैं :-

प्रथम	णल्	अतुस्	उस्
मध्यम	थल्	अथुस्	अ
उत्तम	णल्	व	म

नन्द् णल्

नन्द् अ होने पर

लिट् में द्वित्व होता है अर्थात् धातु दो बार[1]

नन्द् नन्द् अ बोली जाती है।

अभ्यास। द्वित्व में से पहिले को अभ्यास कहते हैं[2] अर्थात् नन्द् नन्द् इन में से पहिला नन्द् अभ्यास कहलावेगा। अभ्यास के हलों में से केवल पहिला हल्

न नन्द् अ शेष रह जाता है[3]

ननन्द अब इस में ननन्द इस भाग को बार-बार सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रही।

थ, व, म यह तीन वलादि हैं। आर्धधातुक लिट् होता ही है इस लिये इन में इट् आगम होगा।

---

१. लिटि धातोरनभ्यासस्य। ६-१-८ २. पूर्वोऽभ्यास: ६-१-४

३. हलादि: शेष: ७-४-६०

theayasamaj.org

रूपमाला

ननन्द	ननन्दतुः	ननन्दुः
ननन्दिथ	ननन्दथुः	ननन्द
ननन्द	ननन्दिव	ननन्दिम

लुङ् (भूत)

लुङ् में च्लि विकरण होता है[१]। लुङ् लङ् लृङ् में (अट्)

अनन्द् च्लि ति च्लि के स्थान में सिच्[२]

अनन्द् स् ति वलादि आर्धधातुक। ङित् लकारों में अन्तिम इ का लोप[३]

अनन्द् इ स् त् अपृक्त में ईट् आगम सिच् से परे। जिसमें केवल एक हल् शेष रह जाए उसे अपृक्त कहते हैं[४]।

अनन्द् इ स् ई त् इट् और ईट् के बीच[५]

अनन्दीत् के सिच् का लोप[६]

अनन्द् इ स् तस् ङित् लकारों में तस्० इण् और कु से परे...

अनन्दिष् ताम् ष और टु के साथ मिलकर स और तु का ष और टु[७]।

अनन्दिष्टाम्।

अनन्द् झि सिच् से परे झि का जुस्[८], अनन्द इ स् उस्

---

१. च्लि लुङि। ३-१-४३
२. च्लेः सिच्। ३-१-४४
३. इतश्च। ३-४-१००
४. अस्ति सिचोऽपृक्ते। ७-३-९६
५. अपृक्त एकाल् प्रत्ययः। १-२-४१
६. इट ईटि। ७-२-२८
७. ष्टुनाष्टुः ८-४-४०
८. सिजभ्यस्त विदिभ्यश्च। ३-४-१०९

thearyasamaj.org

अनन्दिषुः

अनन्दिस	ङित् लकारों में...
अनन्द् इस् ईस्	इट् ईट् के बीच स का लोप

अनन्दीः

अनन्द् थस्	ङित् (थस् का तम्) अनन्द् इस् तम्
अनन्दिष्टम्	अनन्दिष्ट
अनन्द् मि	ङित् मिप् का अम् अनन्द् इस् अम्

अनन्दिषम्

अनन्दिष्वस्	ङित् उत्तम में स् का लोप[1]
अनन्दिष्व	अनन्दिष्म

लिङ्

यह आज्ञा सम्भावना दोनों प्रवृत्तियों में काम आता है।

नन्द् ति

नन्द् शप् ति

नन्द् अ ति

नन्द ति	लिङ् में तिप् आदि को यासुँट् आगम[2]
नन्द यास् ति	सार्वधातुक लिङ् में अन्तिम को छोड़कर शेष सकारों का लोप[3]
नन्द या ति	अ से परे या का इय्[4]

---

१. नित्यं ङितः ३-४-९९ २. यासुट् परस्मैपदेषूदात्तोङिच्च। १-१-५२
३. लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य। ७-२-७९ ४. अतो येयः। ६-२-८०

thearyasamaj.org

नन्द इय् ति	अ और इ का गुण ए। वल् परे होने पर य् व् का लोप[1]
नन्दे ति	ङित् लकारों में (इ का लोप[2])
नन्देत्	
नन्दे य् तस्	वल् परे ङित् लकारों (तस् का ताम्)
नन्देताम्	
नन्देय् झि	लिङ् में झि के स्थान में जुस्[3]
नन्देय् उस्	
नन्देयुः	
नन्देय् सि	वल् परे०
नन्दे सि	
नन्देस्	
नन्देः	
नन्देय् तम्	वल् परे०
नन्देतम्	
नन्देय् त	वल् परे०
नन्देत	
नन्देयम्	ङित्० मिप् का अम्
नन्देय् वस्	वल् परे० ङित् उत्तम में स का लोप[4]
नन्देव	नन्देम

१. लोपोव्योर्वलि। ६-१-६४
२. इतश्च। ३-४५-१००
३. झेर्जुस् ३-४-१०८
४. नित्यं ङितः ३-४-९९

thearyasamaj.org

वन्द् वन्दना करना आत्मनेपद

लट् शप् विकरण

वन्द् लट्

वन्द् शप् त

वन्द् अ त आत्मनेपद में टित् लकारों में टि का ए[1] टि अन्तिम स्वर तथा उससे परे जो अक्षर लगे हों वह टि कहलाते हैं[2] जैसे त में अ टि है आताम् में आम् इतना भाग टि है। इस टि के स्थान में ए होकर

वन्दते

वन्द् अ आताम् आत्मनेपद में टित् लकारों में

वन्द् अ आते जो सार्वधातुक पित् नहीं होते[3] वह ङित्वत् अर्थात् ङित् की तरह समझे जाते हैं। आताम् पित् नहीं है क्योंकि इसमें प् नहीं निकला इस लिये यह ङित्वत् हुआ।

वन्द् अ इय् ते अ से परे ङित् आ का इय्[4] वल् परे० अ + इ = ए

वन्देते

वन्द् झ[5]

वन्द् अ अन्त अ से गुण० आत्मनेपद में टित्...

वन्दन्ते

वन्द् अ थास् टित् लकारों में थास् का से[6]

---

१. टित आत्मनेपदानां टेरे। ३-४-७९
२. अचोन्त्यादिटि १-१-६३
३. सार्वधातुकमपित्। १-२-४
४. लोपोव्योर्वलि। ६-१-६४
५. झोऽन्तः। ५-१-३
६. थासः से। ३-४-८०

वन्दसे

वन्द अ आथाम् आत्मनेपद में टित्.. अ से परे डित् आ०

वन्द् अ इय् थे

वन्देथे

वन्द् अ ध्वम्

वन्दध्वे

वन्द् अ इ वन्दे

वन्द् अ वहि यञ् परे०[१]

वन्दावहे वन्दामहे

लृट् (भविष्यत्)

लृट् में स्य विकरण पूर्ववत्[२]

वन्द् स्य त वलादि आर्ध०[३]

वन्दि ष्य त आत्मने पद में टित्०

वन्दिष्यते

वन्दिष्य आताम् आत्मनेपद में टित्० अ से परे डित् आ०

रूपमाला

वन्दते	वन्देते	वन्दन्ते
वन्दसे	वन्देथे	वन्दध्वे
वन्दे	वन्दावहे	वन्दामहे

---

१. अतो दीर्घो यञि। ७-३-१०१ २. स्यतासी लृलुटोः। ३-१-३३

३. आर्धधातुकस्येड्वलादेः। ७-१-३५

thearyasamaj.org

वन्दिष्य इय् ते वल् परे०[१]

वन्दिष्येते

वन्दिष्य अन्ते अ से गुण परे०...

वन्दिष्यन्ते

वन्दिष्य थास डित् लकारों थास् का से

वन्दिष्यसे

वन्दिष्य आथाम् वन्दिष्य इय् थे

वन्दिष्येथे

वन्दिष्यध्वे

वन्दिष्ये वन्दिष्यावहे वन्दिष्यामहे

रूपमाला

वन्दिष्यते	वन्दिष्येते	वन्दिष्यन्ते
वन्दिष्यसे	वन्दिष्येथे	वन्दिष्यध्वे
वन्दिष्ये	वन्दिष्यावहे	वन्दिष्यामहे

लङ् (अनद्यतन भूत)

लुङ् लङ् लृङ में अट् का आगम[२]।

वन्द् शप् त

अवन्द् अ त अवन्दते टित् लकार नहीं है इस लिये टि को ए नहीं
अवन्दत हुआ।

अवन्द् अ आताम् अ से परे डित् आ० वल् परे०

---

१. लोपो व्योर्वलि ६-१-६४, २. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः। ६-४-७१

thearyasamaj.org

अवन्द इय् ताम् अ वन्द् अ अन्त अ से गुण ...

अवन्देताम्

अवन्दन्त

अवन्दथाः

अवन्द आथाम् अ से परे ङित् आ० अवन्द इय् थाम् वल् परे०

अवन्देथाम्

अवन्दध्वम्

अवन्दे अवन्दावहि अवन्दामहि

रूपमाला

अवन्दत	अवन्देताम्	अवन्दन्त
अवन्दथाः	अवन्देथाम्	अवन्दध्वम्
अवन्दे	अवन्दावहि	अवन्दामहि

रूपमाला-लृङ्

अवन्दिष्यत	अवन्दिष्येताम्	अवन्दिष्यन्त
अवन्दिष्यथाः	अवन्दिष्येथाम्	अवन्दिष्यध्वम्
अवन्दिष्ये	अवन्दिष्यावहि	अवन्दिष्यामहि

लोट्-आज्ञा

वन्दते लट् के अनुसार लोट् में अन्तिम अ के स्थान में आम्[१]

---

१. आमेतः। ३-४-९०

thearyasamaj.org

वन्दताम्	वन्देताम्	वन्दन्ताम्

वन्दसे — लट् के नियमों से बना हुआ लोट् स् व से परे ए के स्थान में व और अम् क्रमशः[1]

वन्दस्व	वन्देथाम्	वन्दध्वम्

वन्दे — उत्तम पुरुष में ए का ऐ[2]

वन्दै	वन्दावहै	वन्दामहै

रूपमाला

वन्दताम्	वन्देताम्	वन्दन्ताम्
वन्दस्व	वन्देथाम्	वन्दध्वम्
वन्दै	वन्दावहै	वन्दामहै

लुङ् (सामान्यभूत)

वन्द त — लुङ् में च्लि विकरण। च्लि के स्थान में सिच् अट् आगम

अ वन्द् इ स् त — वलादि आर्ध[3]

अवन्द् इ स् त — इण् कवर्ग

अवन्दिष् त — ष् और टवर्ग के साथ स् और तवर्ग मिले तो उसके स्थान में ष् और टवर्ग[4]

अवन्दिष्ट

अवन्दि स् आताम् — इण् कवर्ग

---

१. सवाभ्यां वामौ। ३-४-९१ — २. एत ऐ। ३-४-९३

३. आर्धधातुकस्येड् वलादेः। ७-२-३५ — ४. ष्टुनाष्टुः। ८-४-४०

अवन्दिषाताम्

अवन्दिष् झ — अ को छोड़ कर शेष अक्षरों से परे आत्मनेपद में झ के स्थान में अत्। यहां ष् से परे झ है[१]।

अवन्दिषत

अवन्दिष् थास् ष् और तवर्ग

अवन्दिष्ठाः

अवन्दिष् आथाम्

अवन्दिषाथाम्

अवन्दिढ्वम् (यह रूप केवल याद कर लेना उचित है)

अवन्दिष् इ

अवन्दिषि, अवन्दिष्वहि, अवन्दिष्महि

रूपमाला

अवन्दिष्ट	अवन्दिषाताम्	अवन्दिषत
अवन्दिष्ठाः	अवन्दिषाथाम्	अवन्दिढ्वम्
अवन्दिषि	अवन्दिष्वहि	अवन्दिष्महि

लिङ्

वन्द् अ त — आत्मनेपद में त आताम् आदि को सीयुट् आगम[२]

वन्द अ सीय् त — सार्वधातुक लिङ् में अन्तिम को छोड़कर शेष

वन्द् अ ईय् त — सकारों का लोप[३] वल् परे०[४]

---

१. आत्मनेपदेष्वनतः। ७-१-५ — २. लिङः सीयुट् ३-४-१०२

३. लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य। ७-२-७९ — ४. लोपो व्योर्वलि। ६-१-६४

thearyasamaj.org

वन्देत

वन्द् अ सीय् आताम्

वन्देयाताम्

वन्देय् झ लिङ् में झ के स्थान में रन्[१]

वन्दे य् रन् वल् परे होने पर य् व् का लोप

वन्देरन्

वन्देय् थास्

वन्देथाः

वन्देय् आथाम्

वन्देयाथाम्

वन्देय्ध्वम्

वन्देध्वम्

वन्देय् इ लिङ् में इट् के स्थान में अ[२]

वन्देय वन्दे य् वहि = वन्देवहि

वन्दे य् महि = वन्दे महि

रूपमाला

वन्देत	वन्देयाताम्	वन्देरन्
वन्देथाः	वन्देयाथाम्	वन्देध्वम्
वन्देय	वन्देवहि	वन्देमहि

१. झस्यरन् ३-४-१०५ २. इटोऽत् । ३-४-१०६

thearyasamaj.org

लिट् (परोक्षभूत आर्धधातुक)

वन्द् त लिट् में द्वित्व[1]

वन्द् वन्द् त	अभ्यास में आदि हल् शेष
व वन्द् त	लिट् में त झ के स्थान में क्रमशः ए इरे[2]
व वन्द् ए	
ववन्दे	व वन्द् आताम् टित् लकारों में आत्मनेपद में टि का ए
ववन्दाते	
व वन्द् इरे	
ववन्दिरे	व वन्द् थास् थास् का से[3] वलादि आर्धधातुक में इट्
व वन्द् इ से	इण् कवर्ग
ववन्दिषे	
व वन्द् आथाम्	
ववन्दाथे	
ववन्दिध्वे	ववन्दे आत्मनेपद में टित्.. वलादि आर्धधातुक में इट्
ववन्दे ववन्दिवहे ववन्दिमहे	

रूपमाला

ववन्दे	ववन्दाते	ववन्दिरे
ववन्दिषे	ववन्दाथे	ववन्दिध्वे
ववन्दे	ववन्दिवहे	ववन्दिमहे

---

१. लिटि धातोरनभ्यासस्य। ६-१-८ २. लिटस्तझयोरेशिरेच्। ३-४-८१
३. थासः से ३-४-९०

thearyasamaj.org

हेतुमद्भाव

धातुओं से हेतुमद्भाव (Causative) के बनाने के लिए धातु से णिच् प्रत्यय होता है। हेतुमद्भाव का अर्थ है काम करवाना जैसे पढ़ने से पढ़ाना, देखने से दिखलाना। इस प्रकार के रूप बनाने हों तो धातु से णिच् प्रत्यय होता है। किन्तु इस प्रत्यय में विशेषता यह है कि इसके लगाने के बाद धातु, धातु ही बनी रहती है और उसके भ्वादिगण की धातुओं के समान रूप बनते हैं।

उदहारण :-	'णिच्'
कृ णिच्[1]	
कृ इ	ञित् णित् परे होने पर वृद्धि[2]
कार् इ	कारि। ऋ के स्थान पर आर् वृद्धि* अब कारि यह धातु बन गई।
कारि शप् ति	
कारि अति	सार्वधातुक आर्धधयातुक परे होने पर गुण[3]
कारे अति	ए के स्थान में अय्
कारयति	

इसके रूप :-

कारयति	कारयत:	कारयन्ति
कारयसि	कारयथ:	कारयथ
कारयामि	कारयाव:	कारयाम:

---

१. हेतुमति च। ३-१-१६ २. अचोञ्णिति ७-२-११५
३. सार्वधातुकार्धधातुकयोः। ७-३-८४ *उरण् रपरः

पठ् णि

पठ् इ उपधा के अ को भी ञित् णित् परे होने पर वृद्धि[1]

पाठ इ = पाठि

इसके रूप :-

पाठयति	पाठयतः	पाठयन्ति
पाठयसि	पाठयथः	पाठयथ
पाठयामि	पाठयावः	पाठयामः

कारयति = कराता है ।

पाठयति = पढ़ाता है ।

thearyasamaj.org

१. अत उपधायाः ७-१-११६

प्रकरण ४

कृदन्त

अब व्याकरण का अगला भाग आरम्भ होता है। इस भाग में अब यह दिखलाया जायेगा कि धातुओं से शब्द कैसे बनते हैं।

सामान्य नियम

१—सार्वधातुक आर्धधातुक परे होने पर गुण। तरति। नेता

२—ह्रस्व उपधा को भी० भिद् + ता = भेत्ता

३—ञित् णित् होने पर अच् के स्थान पर वृद्धि। लू + य़ लौ + य = लाव्यम्

४—उपधा के अ को भी० पच् + णमुल् = पच् + अम् = पाचम्

५—आ के स्थान में ई, य परे होने पर। दा + य = दी + य = देयम्

६—ञित् णित् कृत् और चिण् परे होने पर आ को युँक् आगम

७—च ज के स्थान में कवर्ग घित् ण्यत् परे होने पर। पाकः, त्यागः, वाक्यम्

८—ह्रस्व को तुँक् आगम पित् कृत् परे होने पर। आगत्य

९—यु वु के स्थान में अन् अक्। गमनम्। पाचकः

१०—आन् परे होने पर अ को मुँक् आगम। पचमानः।

११—कित् ङित् परे होने पर न गुण न वृद्धि। कृतः। मृष्टः।

कर्मवाच्य प्रत्यय

योग्यता, शक्यता, आज्ञा, उद्देश्य, औचित्य

इन अर्थों में धातु से **तव्य, अनीय** प्रत्यय होते हैं।

कृ तव्य सार्वधातुक० गुण होकर ऋ के स्थान में अर् गुण होता है।

कर्तव्य

कृ अनीय

कर् अनीय र से परे न का ण।

करणीय

अजन्त धातुओं से य भी[१]

नीय सार्वधातुकार्ध०

नेय

दा य

दी य (नि० ५)[२]

देय ऋकारान्त और हलन्तों से ण्यत्[३]

कृ

कृ य ऋ के स्थान में आर् वृद्धि होकर (नि० ३) हो कर

कार्य

वच् य उपधा के अ को वृद्धि[४] होकर (नि० ४)

---

१. अचो यत्। ३-१-९७
२. ईद्यति
३. ऋहलोर्ण्यत्। ३-१-१२४
४. अत उपधायाः ७-१-११६

thearyasamaj.org

वाच्य

इस प्रकार कृ से कर्तव्य, करणीय, कार्य्य तीन रूप बने। इनके अर्थ यह हैं :-

१—करना योग्य है।

२—किया जा सकता है।

३—करना चाहिये।

४—करने का उद्देश्य

५—करो

कर्त्रर्थक प्रत्यय

तृ, ण्वु, णिन्

कृ तृ सार्वधातुक० (नि० १)

कर्तृ अनङ्[१]। कर्त + अन् + सु कर्तन् स् कर्तान् स्। कर्ता

कृ ण्वु

कृ वु (नि० ९) न० कर्तृ पु० कर्ता स्त्री० कर्त्री

कृ अक

कारक

कृ णिन् कृ इन् (नि० ३)

कारिन् कर्तृ, कारक, कारिन् इन तीनों शब्दों का अर्थ है करने वाला।

---

१. ऋदुशनस्पुरुदंसयोऽनेहसां च। ७-१-९४

thearyasamaj.org

भाववाची प्रत्यय

ल्युट्-घञ्-क्ति

कृ यु (नि० ९)

कृ अन[१] (नि० १)

कर् अन

करण इसी प्रकार, पचन, हसन ।

पच् घञ्

पच् अ[२] (निरु० २)

पाच् अ[३] (नि० ७)

पाक

कृ क्ति

कृति[४]

इन तीनों का अर्थ करना या पकाया हुआ किन्तु इनमें सूक्ष्म भेद यह है कि पचन, कारण आदि का अर्थ पकाने करने की क्रिया आदि है यह क्रिया प्रधान भाव है ।

पाक का अर्थ पकना है; यह शुद्ध भाव है ।

पक्ति, कृति आदि का अर्थ है करने का परिणाम, पकने का परिणाम । जैसे अष्टाध्यायी पाणिनि की कृति है ।

---

१. युवोरनाकौ ७-१-१ २. अत उपधायाः ७-२-११६

३. चजोः कु घिण्यतोः । ७-३-५२ ४. क्तिङतिच १-१-५

thearyasamaj.org

कालवाची प्रत्यय

शत् परस्मैद
शान आत्मनेपद — प्रवाही वर्तमान

नन्द् शत्[1]

नन्द् अ अत् — शप् विकरण देखो-नन्दति

नन्द अत् — पररूप[2] देखो भवन्ति ।

नन्दत् — प्रसन्न होता हुआ

नपुं०	नन्दत्
पुं०	नन्दन्
स्त्री०	नन्दन्ती

वन्द् शान् — शप् विकरण

वन्द अ आन — मु क् आगम[3] (नि० १०)

वन्द् अ मुक् अन्त

वन्दमान — वन्दना करता हुआ ।

भूतकाल

क्त — कर्मवाच्य

क्तवतु — कर्तृवाच्य

कृ त — (नि० ११)

कृतवत् — (नि० ११)

---

१. लटः शतृशानचाव प्रथमा समानाधिकरणे ३-२-१२४
२. अतो गुणे ६-१-९७ ३. आनेमुक् ७-२-८२

thearyasamaj.org

पूर्वकालिक क्रिया

क्त्वा

कृत्वा (नि० ११)

विजि त्वा उपसर्ग लगने पर क्त्वा के स्थान में ल्यप्

विजि य[१] (नि० ८)

विजित्य[२]

उद्देश्य-बोधक (के लिए)

तुमुन्[३]

तुम्

कृ तुम् (न० १)

कर्तुम्

उपपद कृदन्त

यह वह प्रकरण है जिसमें धातु और शब्दों के मेल से बने शब्द दिखलाये जायेंगे। जैसे लकड़िहारा, यह शब्द लकड़ी और हरना इन दो शब्दों से बना है, जिस में लकड़ी शब्द है और हरना धातु है। इनमें से जिन शब्दों के योग से यह शब्द बनते हैं उपपद कहलाते हैं जैसे लकड़िहारा इस शब्द में लकड़ी उपपद है।

कर्म उपपद होने पर धातु से अण्

कुम्भम् करोति

कुम्भ कृ अण्[४] (नि० ३)

---

१. समासे ऽनञ्पूर्वेक्त्वोल्यप् ७-१-३७ २. ह्रस्वस्य पितिकृति तुक्। ६-१-७१

३. तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३-३-१० ४. कर्मण्यण् ३-२-१

thearyasamaj.org

कुम्भकार कुम्भ अर्थात् घड़े को करने (बनाने) वाला
आकारान्तों से क[1]

सुखम् ददाति

सुख दा अ[2] कित् और इट् परे होने पर आ का लोप;

सुखद् अ = सुखद

प्रकरण ५

स्त्रीप्रत्यय तथा तद्धित

आ ई

स्त्रीप्रत्यय—टाप् डाप् चाप् ङीप् ङीष् ङीन् ति, ष्यङ्

इस प्रकरण में पुल्लिङ्ग शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाने के नियम लिखे जायेंगे।

सामान्य नियम (स्त्री-प्रत्यय)

१—तद्धित का य और अच् परे होने पर तथा

२—ई परे होने पर इ और आ का लोप[3]

३—अन् के अ का लोप सर्वनामस्थानवर्जित (सुँ = औट्) य और अच् परे होने पर[4]।

टाप्

अजादि गण (देखो पाणिनि-मुनिकृत गणपाठ) के शब्दों से तथा अकारान्त शब्दों से टाप्

---

१. आतो लोप इटि च ६-४-६४
२. आतोऽनुपसर्गेकः ३-२-३
३. यस्येतिच। ६-४-१४८
४. अल्लोपोऽनः। ६-४-१३४

thearyasamaj.org

अज	(बकरा) टाप्[१]
अज आ	
अजा	(बकरी) डाप् (बहुराजा)
राम टाप्	चाप् (कारीषगन्ध्या)
राम आ	
रामा	

ङीप्

ऋकारान्त और नकारान्तों से ङीप्

धातृ ङीप्[२]	
धातृ ई	ऋ के स्थान में र्[३]
धात् र् ई	
धात्री	
स्वामिन्	
स्वामिनी	ब्रह्मचारिणी, दण्डिनी
राजन्	
राजन् ई	
राजन्	य और अच् परे होने पर अन् के अ का लोप[४]
राज्ञी	(कुरुचर + ट = कुरुचर + ङीप्) = कुरुचर + ई (कुरुचर् + ई = कुरुचरी)

---

१. अजाद्यतष्टाप् ४-१-४
२. ऋन्नेभ्यो ङीप् ४-१-७५
३. इकोयणचि ६-१-७५
४. अल्लोपो ऽनः। ६-४-१३४

thearyasamaj.org

टित् ढ अण् अञ् द्वयसज् दघ्नञ् मात्रच् तयप् ठक् ठञ् कञ् क्वरपः यह प्रत्यय जिनके लग चुके हों उनसे स्त्रीलिङ्ग में ङीप्[१]।

कुम्भकार ङीप्

कुम्भकार ई (नि० १)

कुम्भकारी[२] (कुम्हारी)

तद्धित सामान्य नियम

(१) स्त्री प्रत्यय में देखो।

(२) स्त्री प्रत्यय में देखो।

(३) ठ् के स्थान में इक्[३]

फ् के स्थान में आयन्[४]

घ् के स्थान में इय्

छ के स्थान में ईय्

ढ् के स्थान में एय्

ख् के स्थान में ईन्

(४) उ के स्थान में गुण य और अच् परे होने पर।

(५) ञित्, णित्, कित् परे होने पर अचों में प्रथम अच् के स्थान में वृद्धि।

उदाहरण

समास + ठक् (ठ् के स्थान में इक्)

---

१. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ४-१-१५

२. यस्येति च ६-४-१४८ ३. ठस्येकः ७-३-५०

४. आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ७-१-२

समास + इक् + अ ठक् के कित् होने से अचों में से पहिले अच् अ के स्थान में वृद्धि आ[1] ।

सामास इक स में अ का लोप[2] (नि० १)

सामास् इक

सामासिक

प्रकरण-६

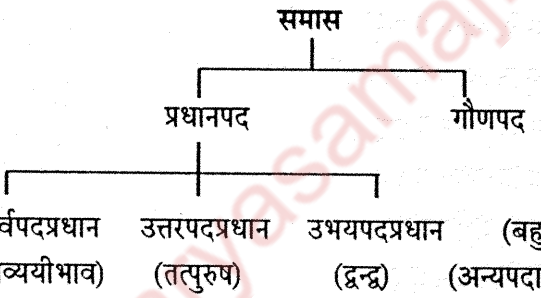

समास दो प्रकार के हैं एक प्रधानपद दूसरा गौणपद । जैसे पनघट इस शब्द में घाट प्रधान है क्योंकि शब्द का अर्थ अन्त में एक प्रकार का घाट होता है । किन्तु हँसमुख शब्द को लीजिये हँसने वाला है मुख जिसका, इसमें हंसमुख का अर्थ एक आदमी हुआ जिसका मुख हँसता रहता है । जो पहले शब्द पनघट में एक पद घाट प्रधान है किन्तु हँसमुख में दोनों गौण है । इसमें से प्रधानपद के तीन भेद होते हैं । एक वह जिसमें **पहला पद** प्रधान हो जैसे अनुगंगम् अर्थात् गंगा के साथ-साथ । इसमें अनु यह प्रधान है । दूसरा पनघट जिसमें **उत्तरपद** अर्थात् पिछला पद

---

१. कितिच ७-२-११८ २. यस्येति च ६-४-१४८

घाट प्रधान है। तीसरा दाल-भात जिसमें दाल और भात दोनों एक सी सत्ता रखता है, चौथा हँसमुख जिसमें कोई पद प्रधान नहीं। इनको व्यावहारिक भाषा में क्रमशः अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व तथा बहुव्रीहि कहते हैं। बहुव्रीहि समास की एक सरल पहिचान यह है कि इस में द्रव्यपद (Noun) गुणपद (Adjective) के रूप में बदल जाता है। मुख एक द्रव्य पद है किन्तु हँसमुख एक विशेषण पद है। इसीलिये यह गौणपद कहलाता है।

(१) समास में बीच की विभक्तियों का लोप हो जाता है वृक्षस्य पत्रम् बीच की षष्ठी विभक्ति का लोप होकर **वृक्षपत्रम्** बन गया यह **तत्पुरुष** है।

नगरस्य उप (समीपे) उप नगरम् यहां भी षष्ठी का लोप होकर **उपनगरम्** बन गया। यह **अव्ययीभाव** है।

रामश्च लक्ष्मणश्च दोनों प्रथमाओं का लोप होकर **राम-लक्ष्मणौ**। यह **द्वन्द्व** है।

गौरवर्णः पुरुषः गौरो वर्णो यस्य स गौरवर्णः। यहां गौरः और वर्ण दोनों प्रथमाओं का लोप होकर **गौरवर्णः** एक शब्द बन गया। यह **बहुव्रीहि** है।

(२) अव्ययीभाव समास में विभक्तियों का लोप-

हरौ इति हरौ अधि = **अधिहरि**।

(३) अकारान्त अव्ययीभाव में सुप् (पञ्चमीरहित) के स्थान में अम्[१] उपनगरम्।

---

१. नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः, २-४-८३

नोट-विद्यार्थियों को चाहिये कि किसी संस्कृत पुस्तक में से **समास** लेकर उनकी पहिचान करें कि वह कौनसा है तथा इसका **विग्रह** (समास के पहिले की अवस्था) क्या है तथा इसी प्रकार भाषा के पदों को लेकर उनका समास बनायें जिससे उन्हें समास तथा विग्रह दोनों का अभ्यास हो जाय।

तत्पुरुष समास के द्विगु कर्मधारय आदि अन्य अवान्तर भेद भी हैं किन्तु वह यहां नहीं दिये गये हैं।

प्रकरण ७

सूत्रार्थाध्याय

अब हम इस व्याकरण-प्रवेशिका के एक छोटे से किन्तु परमोपयोगी भाग पर आ गये हैं। इस अध्याय में यह समझाया जायगा कि पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्रों को किस प्रकार समझना चाहिये'। इसी उद्देश्य को सामने रखकर हमने आरम्भ में नामिक का कुछ भाग पढ़ाया है। अब पाणिनीय अष्टाध्यायी की ओर ध्यान देना चाहिये उससे हमारा आशय और भी स्पष्ट हो जायगा।

परमकारुणिक महर्षियों ने सूत्र-प्रणाली की स्थापना करके लोक पर बड़ा अनुग्रह किया है। सूत्र-प्रणाली की सबसे पहिली विशेषता यह है कि उस में क्रियापद का प्रयोग कहीं नहीं। इसलिए केवल नामिक का साधारण ज्ञान प्राप्त करके हम सूत्रों की भाषा समझ सकते हैं। किन्तु पाणिनीय व्याकरण की भाषा में एक और विशेषता यह है कि उसमें नामिक में से भी प्रथमा, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी केवल चार विभक्तियों का प्रयोग किया गया है। अब हम इन विभक्तियों के अर्थ बता कर स्पष्ट कर देंगे कि सूत्रों का अर्थ किस प्रकार होता है-

प्रथमा = विधि, अतिदेश, संज्ञा, परिभाषा, नियम, अधिकार, निषेध

पञ्चमी = से परे ।

षष्ठी = के स्थान पर ।

सप्तमी = परे होने पर ।

अब एक सूत्र "इक: यण् अचि" ले लीजिये । इसमें 'इक:' षष्ठी का एकवचन है इसलिये 'इक:' का अर्थ "इक् के स्थान पर" यह हुआ । दूसरा पद है "यण्" यह विधिपद है इसका अर्थ है "यण् हो" । यह प्रथमा विभक्ति है इसका अर्थ स्पष्ट है । तीसरा पद है "अचि", यह सप्तमी है इसलिये इसका अर्थ है "अच् परे होने पर" इस प्रकार सब मिला कर "इक् के स्थान पर यण् हो अच् परे होने पर" यह अर्थ हुआ । अब कल्पना कर लीजिये कि इसके ठीक बाद सूत्र है "आत् गुण: अचि", तो इसमें पिछले सूत्र से "अचि" यह अनुवृत्ति मिलाकर "आत् गुण: अचि" यह अर्थ हुआ । अब "आत्" का अर्थ हुआ "अ से परे" क्योंकि यह पञ्चमी है "गुण" का अर्थ है "गुण हो" "अचि" का अर्थ हुआ अच् परे होने पर । सब मिला कर "अ से परे अच् परे होने पर गुण हो" यह अर्थ हुआ । किन्तु इसमें "परे" पद दो बार भाषा में नहीं लगाया जाता है । इसलिये 'अ से अच् परे होने पर गुण हो' यह अर्थ हुआ ।

अनुवृत्ति

ऊपर हमने एक नये शब्द का प्रयोग किया है । इसलिये उसकी व्याख्या कर देनी आवश्यक है । **अनुवृत्ति** उस पद वा पद समुदाय का नाम है, जिसे हम पहले वाक्य से अगले वाक्य में बिना दोहराये स्वयं बुद्धि द्वारा मिलाकर वाक्य का अर्थ पूरा कर लेते हैं । जैसे किसी ने कहा 'राम को पांच लड्डू दो, कृष्ण को तीन' अब यहां 'कृष्ण को तीन' यह

वाक्य अपूर्ण है। किन्तु पिछले वाक्य में से "लड्डू दो" इतने पद को मिला कर 'कृष्ण को तीन लड्डू दो' ऐसा अर्थ हुआ। इस पद समुदाय को **अनुवृत्ति** कहते हैं। इसे ध्यान में रक्खे बिना हम सूत्रों का अर्थ कदापि नहीं समझ सकते।

सूत्रों के प्रकार

यदि आपने पिछले पाठ को अच्छी तरह पढ़ा होगा। तो प्रथमा विभक्ति की व्याख्या में "विधि, अतिदेश, संज्ञा, परिभाषा, नियम, अधिकार, निषेध" ये सात शब्द पढ़े होंगे। अब हम इन शब्दों की व्याख्या करते हैं।

विधि सूत्र-ये वे हैं जो व्याकरण का वास्तविक भाग हैं जिनमें संस्कृत भाषा के नियम बताये गये हैं। शेष छः प्रकार के सूत्र व्याकरण शास्त्र की भाषा को समझाने का काम करते हैं।

संज्ञा सूत्र-ये वे सूत्र हैं जो उन शब्दों का अर्थ बताते हैं जिन का अर्थ व्याकरण की भाषा में लौकिक भाषा के अर्थ से भिन्न होता है अथवा जो नए ग़ढ़े हुए हैं। जैसे गुण, वृद्धि अथवा टि, घु आदि शब्द जिनका पणिनि महाराज ने नया संकेत किया है उनकी व्याख्या करते हैं। जैसे-अदेङ्गुणः। वृद्धिरादैच्। अचोऽन्त्यादिटि दाधाघवदाप्। दाधाघवदाप् = दा रूप और धा रूप धातुओं का नाम घु है।

परिभाषा सूत्र-ये वे सूत्र हैं जो व्याकरण में विभक्ति या पद-समुदायों के विशेषार्थ बताते हैं जैसे-'षष्ठी स्थाने योगा' अर्थात् षष्ठी का अर्थ है "के स्थान पर"।

अतिदेश सूत्र-जो उपमा देते हों जैसे कई बार कहा जाता है कि यह आदमी यद्यपि लाल पगड़ी वाला नहीं है तथापि इसे अमुक देश काल में वही अधिकार दिये जाते हैं। तो इसे व्याकरण की भाषा में यों कहेंगे कि अमुक स्थान तथा समय पर इस आदमी में लाल पगड़ी वाले का अतिदेश किया गया। इसप्रकार व्याकरण में सूत्र है जैसे **'सार्वधातुकमपित्'** अर्थात् 'अपित् सार्वधातुक डित्वत् समझे जावे' यह अतिदेश सूत्र है।

अधिकार सूत्र-ये वे सूत्र हैं जो केवल यह बताते हैं कि यहां से यह प्रकरण आरम्भ होता है। जैसे **'प्रत्ययः**[1]'

नियम सूत्र-ये वे सूत्र हैं जो किसी और सूत्र के क्षेत्र को नियमित करते हैं। जैसे **"पतिः समास एव**[2]**"** अर्थात् पति शब्द समास में ही "घि" कहलाता है। इसकी अधिक व्याख्या की यहां आवश्यकता नहीं।

निषेध सूत्र-जिसके द्वारा पूर्वोक्त विधि का क्वचित् निषेध हो। जैसे-न **विभक्तौ तुस्माः**। इसके द्वारा पूर्वोक्त 'हलन्त्यम्' सूत्र द्वारा विहित अन्त्य हल् मात्र की जो इत् सञ्ज्ञा की गई थी उसमें से तु, स्, म् की इत्सञ्ज्ञा का निषेध किया गया।

इस प्रकार विभक्त्यर्थों को जान कर सूत्रों के पढ़ने से बहुत शीघ्र व्याकरण का बोध हो सकता है।

प्रवेशिका जो विभक्त्यर्थ बताये गये हैं वे निर्देश मात्र हैं। कई स्थानों पर षष्ठी का अर्थ "के स्थान पर" नहीं होता जैसे जहा क् ट् स् आदि आगम के चिह्न लगे हों किन्तु प्रवेशिका में साधारण नियम ही बताये गये हैं। इसीलिये वे यहां नहीं लिखे गये।

---

१. पा० अ० ३-१-१ २. पा० अ० १-४-८

३. पा० अ० १-३-४

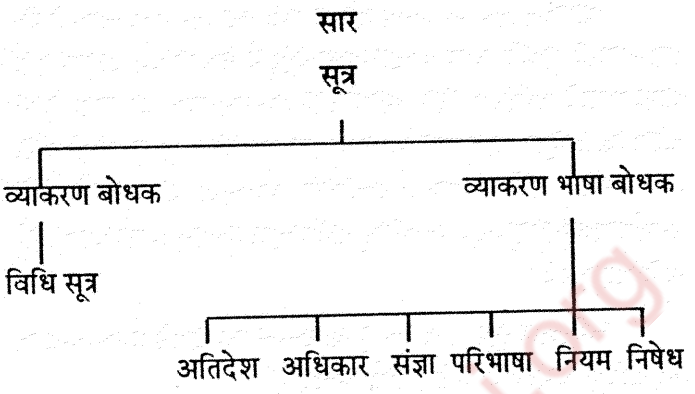

सार

प्रयोगाध्याय

सन्धि

इस प्रकरण में सन्धि सर्वनाम आदि के कुछ ऐसे नियम लिखे जायेंगे जिनके बिना साधारण वाक्य योजना भी नहीं हो सकती।

(१) हश् परे होने पर विसर्ग सहित अ को ओ[1]-

राम: + हसति = रामो हसति

अः अ = समोसा

जहां दो ह्रस्व अकारों के बीच में विसर्ग: हो उसका नाम हमने समोसा रक्खा है।

समोसे का ओ-

राम: अस्ति रामोऽस्ति।

आ से परे विसर्ग का लोप यदि कोई हश् अक्षर परे हो-

पुरुषा: यान्ति   पुरुषा यान्ति।

१. हशिच ६-१-११४

thearyasamaj.org

सर्वनाम

पुल्लिग

जस् के स्थान में शि। सर्व शि = सर्व + इ = **सर्वे**।

नपुंसकलिंग में भी-

ङे के स्थान में स्मै[१]। सर्व + ङे = **सर्व स्मै**।

ङसि के स्थान में स्मात्[२] सर्व + ङसि = **सर्वस्मात्**।

ङि के स्थान में स्मिन्[२]। सर्व + ङि = **सर्वस्मिन्**।

पुँल्लिग :- सर्वे साम् झलादि[३] बहुवचन०
सर्वेषाम् इण्कवर्ग०[४]

स्त्रीलिंग :- सर्वा साम् = **सर्वासाम्**
केवल स्त्रीलिंग

स्त्रीलिङ्ग में सर्व से सर्वा शब्द बन गया।

ङित् विभक्तियों में स्याट् का आगम और आ का ह्रस्व[५]

सर्वा स्या (ङे)
सर्वा स्या ए = **सर्वस्यै**।

सर्वनाम उन शब्दों को कहते हैं जो किसी द्रव्यपद का अन्य पद के साथ प्रतिनिधि होकर रहते हैं। जैसा राम आता है, उसको देखो। इस वाक्य में उसको इस पद में 'उस' राम का प्रतिनिधि है। वास्तव में वाक्य यों है कि राम आता है, राम को देखो। राम शब्द का बार-बार दोहराना

---

१. सर्वनाम्नः स्मै ७-१-१४ २. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७-१-१५
३. बहुवचने झल्येत ७-३-१०३ ५. सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७-३-११४
४. इणकोः आदेशप्रत्यययोः ८-३-५६ ८-३-५९

thearyasamaj.org

उचित नहीं जान पड़ता । इसलिये उसकी ओर 'उस' सर्वनाम से निर्देश किया जाता है ।

सम्बोधन

बुलाना या पुकारना । राम ! तुम महावीर हो । इसमें प्रथमा विभक्ति लगेगी[१] ।

१— एङ् और ह्रस्व से परे सम्बोधन के सुँ का लोप[२]
राम सुँ राम ! शेष रामौ: रामा:

२— ह्रस्व को गुण सम्बोधन के सुँ परे होने पर[३]
हरि सुँ, हरे सुँ, सुँ का लोप (१) हरे !

३— नदी को ह्रस्व सम्बोधन का सुँ परे होने[४] पर- !
सखी सुँ, सखि सुँ, परे का लोप (१) सखि !

४— आप् को ए सम्बोधन का सुँ होने पर-
रमा सुँ रमे सुँ सुँ का लोप (१) रमे !

साधारण भाषा में विभक्तियों के अर्थ

विभक्ति	अर्थ	कारक अर्थ
प्रथमा	कर्ता	करने वाला ।
द्वितीया	कर्म्म	जिसको काम किया जाय ।
तृतीया	करण	जिससे काम किया जाय ।
चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिये ।
पञ्चमी	अपादान	जिससे अलग हो ।
षष्ठी	सम्बन्ध	का, के, की ।
सप्तमी	अधिकरण	में, पर ।

१. सम्बोधने २-३-४७
२. एङ्ह्रस्वात्समबुद्धेः ६-१-१०७
३. ह्रस्वस्य गुणः ७-३-१०८
४. यूस्त्र्याख्यौ नदी १-४-३
५. अम्बार्थनद्योह्रस्वः ७-३-१०७

कुछ हठीली ग़लतियां

भाषा में संस्कृत बनाने में 'से' पर बहुत ध्यान देना चाहिये। यह साधन तथा अलग होना दोनों अर्थों में आता है। जैसे-कुल्हाड़ी से समिधा काटता है और वृक्ष से फूल तोड़ता है। दोनों में 'कुल्हाड़ी से' तथा 'वृक्ष से' वही 'से' आया है किन्तु 'कुल्हाड़ी से' इस पद में 'से' यह बताता है कि यह कुल्हाड़ी काटने का साधन है दूसरी ओर 'वृक्ष से' इस पद में 'से' का अर्थ है कि इससे फूल अलग होता है। पहिले को अनुवाद में तृतीया होगी। दूसरी को पञ्चमी। कुठारेण समिधः खण्डयति। वृक्षात् पुष्पम् आच्छिनत्ति।

"के साथ" इस पद का विद्यार्थी षष्ठी से अनुवाद करते हैं। किन्तु करना चाहिये तृतीया से। 'रामः लक्ष्मणेन सह वनं याति' राम लक्ष्मण के साथ वन को जाता है। 'रामः लक्ष्मणस्य सह वनं याति' ऐसा नहीं।

'राम कृष्ण को लड्डू देता है' इस वाक्य में 'को' भ्रम पैदा करता है। संस्कृत में जिसको कोई चीज दी जाती है उसमें चतुर्थी विभक्ति लगती है। विद्यार्थी 'को' को देख कर द्वितीया कर देते हैं-

रामः कृष्णाय मोदकं ददाति। शुद्ध

रामः कृष्णं मोदकं ददाति। अशुद्ध

'मुझको व्याकरण नहीं आता।' यह संस्कृत का मुहाविरा नहीं है। संस्कृत का मुहाविरा है मैं व्याकरण नहीं जानता। 'माम् व्याकरणं नागच्छति' अशुद्ध है, 'अहं व्याकरणं न जानामि' ठीक है।

विशेष्य-विशेषण

'काला घोड़ा' इसमें घोड़ा विशेष्य तथा काला विशेषण है। जो लिङ्ग-वचन विशेष्य के हों वही विशेषण तथा सर्वनाम के भी होते हैं।

क्रिया-विशेषण

क्रिया विशेषण सदा नपुंसकलिंग-प्रथमा विभक्ति तथा एक वचन में होता है-

धीरे धीरे जाता है-मन्दं मन्दं व्रजति

अव्यय

उन पदों को कहते हैं जिनके रूप सदा एक से रहते हैं। जैसे-'सदा' 'अहो' 'यथा'।

कर्म्मवाच्य

राम लकड़ी काटता है कर्तृवाच्य है। राम से लकड़ी काटी जाती है यह कर्मवाच्य है। एक में कर्ता प्रधान है, एक में कर्म्म। इसमें क्या अन्तर है यह भली प्रकार वहां पता लगता है जहां किसी एक को बल-पूर्वक कहना होता है जैसे **'रामो द्विर्नाभिभाषते'** इस वाक्य को कर्म्मवाच्य कर देने से यह एकदम निर्जीव हो जाता है। **'रामो** द्विर्नाभि भाषते' और 'द्विर्न **रामेण** भाष्यते' में जो अन्तर है वह जरासा भी ध्यान देने से हृदय पर अङ्कित हो जाता है। वहां राम कर्ता को विशेष रूपेण अलग करता है इसलिये यहां कर्तृवाच्य ही अच्छा लगता है। इसी प्रकार देहि की अपेक्षा दीयताम् अधिक सभ्य भाषा क्यों है? क्योंकि इसमें कर्म्मवाच्य होने से कर्ता का त्वङ्कर अस्त हो गया है। यह बातें पढ़ाने वाले खूब स्पष्ट कर दें। कर्तृवाच्य से कर्म्मवाच्य बनाने में ५ नियम लगते हैं।

कर्म्मवाच्य के पांच नियम

(१) कर्म्म में प्रथमा।
(२) कर्ता में तृतीया।

(३) यक् विकरण।
(४) आत्मनेपद।
(५) क्रिया के पुरुष, वचन कर्म्म के अनुकूल।

उदाहरण

'रामः पुस्तकं पठति' यह कर्तृवाच्य का रूप है। इसमें 'रामः' कर्ता है 'पुस्तकम्' कर्म्म है, 'पठति' क्रिया हैं, इसके कर्म्मवाच्य में रामः के स्थान में तृतीया, पुस्तकम् द्वितीया के स्थान में पुस्तकम् प्रथमा, पठति के स्थान में पठ्यते होकर 'रामेण पुस्तकम् पठ्यते' रूप हुआ।

इसमें कर्ता के बहुवचन का क्रिया पर कुछ असर न होगा। रामैः पुस्तकं पठ्यते ऐसा ही रूप बनेगा। किन्तु पुस्तक कर्म्म के बहुवचन से क्रिया में भी अन्तर होगा। रामेण पुस्तकानि पठ्यन्ते। इस प्रकार हमने देख लिया कि क्रिया कर्म्म के अनुकूल चलती है। इन नियमों का उचित अभ्यास करने से बहुत शीघ्र बहुत बोध हो जाता है। अन्त में हम इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि कर्म्मवाच्य के यह पांच नियम सदा उंगलियों पर रखने चाहियें। हमारा अनुभव है कि विद्यार्थी सब से अधिक अशुद्धियां इसी विषय में करते हैं और बहुत वर्षों के अभ्यास के पश्चात् भी यहां आकर चूक जाते हैं। इसलिये इन नियमों को बल-पूर्वक याद करना चाहिये।

श्री विष्णुमित्रसुरगुरोः करुणाकणस्य,
तृष्यन्मदीयमति शुक्तिपुटं गतस्य।
यस्यैष मुग्धबटुचित्तहरो विवर्त-
स्तस्यैव पादयुगले पुनरर्पयामि॥

परिशिष्ट

पाणिनीय प्रवेशिका हिन्दी सूत्रों में

प्रथम अध्याय-सन्धि

१	सन्धि अक्षरों से अक्षरों का मेल		
२	अ-ए-ओ का नाम गुण	**अदेङ् गुणः**	१-१-२
३	अ से इक् परे होने पर गुण	**आद् गुणः**	६-१-८५
४	आ-ऐ औ का नाम वृद्धि	**वृद्धिरादैच्**	१-१-१
५	अ से एच् परे होने पर वृद्धि	**वृद्धिरेचि**	६-१-८६
६	अक् से सवर्ण अक्षर परे होने पर दीर्घ	**अकः सवर्णे दीर्घः**	६-१-१८
८	एच् के स्थान में अय्, अव्, आय्, आव्, अच् परे होने पर	**एचोऽयवायावः**	६-१-७६

द्वितीय अध्याय नामिक

१	**लशकु** उड़ जाते हैं शुरु में जब यह आते हैं	**लशक्वतद्धितेः**	१-३-८
	चूटू भी खोये जाते हैं अनुनासिक भग जाते हैं	**चूटू उपदेशेऽजनुना सिकइत्**	१-३-२,६
	हल् जब अन्त में आते हैं फिर नहीं मुंह दिखलाते हैं स् जब अन्त में आता है दो : बिन्दी हो जाता है ।	**हलन्त्यम्** **खरवसानयोर्विस जनीयः**	१-३-२
२	**प्रत्यय** जो अन्त में जुड़े, **उपसर्ग** जो धातु से पहले जुड़े		८-३-९५
३	नामिक जिसमें शब्दों के रूप बताये जावें जैसे रामः रामौ रामाः ।		

thearyasamaj.org

४	नामिक का कोष्ठक		
५	अक् से अम् परे होने पर अम् के अ के स्थान में अम् से पहिला अक्षर हो जाता है।	अमि पूर्वः	६-१-१०४
६	दीर्घ से परे शस् के स् का न् पुल्लिग में	तस्माच्छसो नः पुंसि।	६-१-१०३
७	अ से परे टा का इन ङसि का अत् ङस् का स्य।	टाङसिङसामिनात्स्याः	७-१-१२
	अ से परे भिस् का ऐस्।	अतोभिस ऐस्	७-१-९
	अ से परे ङे का य	ङेर्यः	७-१-१३
८	रष से पर न का ण	रषाभ्यां नो णः समानपदे	७-४-१
९	यञ् परे होने पर अ का दीर्घ	अतोदीर्घोयञि	७-३-१०१
१०	बहुवचन में झल् परे होने पर अ का ए	बहुवचने झल्येत्	७-३-१०३
११	ओस् परे होन पर अ का ए	ओसि च	७-३-१०४
१२	ह्रस्व, नदी, आप् से परे आम् का नाम्	ह्रस्वनद्यापोनुट्	६-१-५४
१३	नाम परे होने पर ह्रस्व का दीर्घ	नामि	६-४-३
१४	इण् कु से परे स का ष	इण्कोः-आदेशप्रत्यययोः	८-३-५९ ८-३-५९
१५	अकारान्त नपुंसकलिङ्ग में सुं और अम् का अम्	स्वमोर्नपुं संकात् अतोऽम्	७-१-२३,२४
१६	नपुंसकलिङ्ग में औ का शी	नपुंसकाच्च जसः शी औङ आपः	७-१-१७-१९
१७	नपुंसकलिङ्ग में जस् और शस् का शि	जश्शसोः शिः	७-१-२०

thearyasamaj.org

१८	शि को सर्व्वनाम स्थान कहते हैं	शि सर्वनामस्थानम्	१-१-४१
१९	झलन्त और अजन्त नपुंसकलिङ्ग में न् जुड़ता है सर्व्वनाम स्थान परे होने पर	नपुंसकस्य झलचः	७-१-७२
२०	अन्तिम से पहले अक्षर को उपधा कहते हैं	अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा	१-१-६४
२१	नकारान्त की उपधा को दीर्घ सर्व्वनामस्थान परे होने पर	सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ	६-४-८
२२	अकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में आप् या ङीप् लग कर आकारान्त या ईकारान्त बन जाते हैं।	अजाद्यतष्टाप् वयसिप्रथमे ऋन्नेभ्योङीप्	४-१-४ ४-१-२० ४-१-५
२३	हल् ङी आप् से परे सुँ का लोप	हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुति स्यपृक्तं हल्	६-१-६६
२४	आप् से परे औ का शी	औङ आपः	७-१-१८
२५	टा और ओस् परे होने पर आ का ए	आङि चापः, ओसि च	७-३-१०४-१०५
२६	आप् से परे ङित् विभक्तियों में या जुड़ता है	याडापः	७-३-११३
२७	आप् नदी नी से परे ङि के स्थान में आम्	ङेराम् नद्याम्नीभ्यः	७-३-११६
२८	अक् से परे प्रथमा और द्वितीया में पूर्व सवर्ण दीर्घ	प्रथमयोः पूर्व सवर्णः	६-१-११
२९	ह्रस्व के स्थान में गुण जस् परे होने पर	ह्रस्वस्यगुणः जसि च	७-३-१०८,९
३०	ह्रस्व इ उ का नाम घि	शेषोघ्यसखि	१-४-७

thearyasamaj.org

३१	घि से परे टा का ना	आङो नाऽस्त्रियाम्	७-३-११९
३२	ङित् विभक्तियों में घि के स्थान में गुण	घेर्ङिति	७-३-१११
३३	एङ् से ङसि ङस् परे होने पर पूर्वरूप	ङसिङसोश्च	६-१-१०७
३४	इ उ से परे ङि के स्थान में औ घि के स्थान में अ	इदुद्भ्यामौत् अच्चघेः	७-३-११७ ७-३-११८
३५	नपुंसकलिङ्ग में सुँ और अम् का लोप	स्वमोर्नपुंसकात्	७-१-२३
३६	इगन्त नपुंसकलिङ्ग में न् जुड़ता है अच् परे होने पर	इकोऽचि विभक्तौ	७-१-७३
३७	दीर्घ से परे औ और जस् से पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होता	दीर्घाज्जसि च	७-१-१०९
३८	दीर्घ ई ऊ स्त्रीलिङ्ग का नाम नदी	यू स्त्र्याख्यौ नदी	१-४-३
३९	नदी से परे ङित् विभक्तियों में आ जुड़ता है	आण्नद्याः	७-३-११२
४०	सुँ आदि लगने से शब्द पद कहलाते हैं पद का अन्त पदान्त	सुप्तिङन्तं पदम्	१-४-१४
४१	चु के स्थान में कु झल् परे होने पर पदान्त में	चोः कुः	८-२-३०
४२	झल् के स्थान में जश् झश् परे होने पर और पदान्त में	झलां जस् झशि	८-४-५२
४३	वाक्य के अन्त को अवसान कहते हैं	विरामोऽवसानम्	१-४-१०९
४४	अवसान में विकल्प	वाऽवसाने	८-४-५५
४५	स्त्रीलिङ्ग में घि से परे टा का ना नहीं होता	आङोनाऽस्त्रियाम्	७-३-११९

thearyasamaj.org

४६ ह्रस्व स्त्रीलिङ्ग शब्दों की ङित् विभक्तियों में घि नदी का विकल्प अर्थात् दोनों रूप बनते हैं **'ङिति ह्रस्वश्च'** १-४-६

तृतीय अध्याय आख्यातिक

१ क्रिया के रूपों को आख्यातिक कहते हैं (आख्यात + ठक् = (इक)

२ क्रियापद के निचोड़ को धातु अथवा आख्यात कहते हैं

३ धातु की पांच प्रवृत्ति होती हैं भूत, वर्तमान, भविष्यत्, आज्ञा और सम्भावना

४ इन प्रवृत्तियों के छोटे नाम इस प्रकार हैं (१) वर्तमान लट् (२) भविष्यत् लृट् (३) अनद्यतन भूत-लङ् (४) परोक्ष अनद्यतन भूत-लिट् (५) सामान्य भूत-लुङ् (६) आज्ञा लोट् (७) सम्भावना लृङ् (८) लिङ् आज्ञा, सम्भावना दोनों में

५ दो कोष्ठक एक आत्मनेपद दूसरा परस्मैपद

६ परस्मैपद तिप्, तस्, झि । सिप्, थस्, थ । मिप् वस् मस्

७ आत्मनेपद त आताम् झ । थास् आथाम् ध्वम् । इट, वहि महिङ्

८ इन सबको मिला कर तिङ् कहते हैं

९ धातुओं से परे लगने वाले प्रत्ययों में से तिङ् तथा शित् सार्वधातुक- कहलाते हैं शेष आर्धधातुक **तिङ्शित् सार्वधातुकम्** ३-४-११३ **आर्धधातुकं शेषः** ३-४-११४

१० धातुपाठ में धातु जो धातु परस्मैपदी कहलाते हैं उनसे परे परस्मैपद कोष्ठक लगता है आत्मनेपदी से आत्मनेपद, उभयपदी से दोनों

११	विकरण उन प्रत्ययों को कहते हैं जो धातु तथा प्रत्यय के बीच में जुड़ते हैं		
१२	कर्तृवाच्य में सार्वधातुक परे होने पर शप् विकरण	**कर्तरिशप्**	३-१-६२
१३	झ के स्थान में अन्त्	**झोऽन्तः**	७-१-३
१४	अ से गुण परे होने पर पररूप एक पद के अन्दर	**अतोगुणे**	६-१-९४
१५	यञ् परे होने पर अ का दीर्घ	**अतोदीर्घोयञि**	७-३-१०१
१६	लृ वाले लकारों में अर्थात् लृट् और लृङ् में स्य विकरण	**स्यतासी लृलुटोः**	३-१-३३
१७	वलादि आर्धधातुक में इट् आगम	**आर्धधातुकस्येड् वलादेः**	७-२-३५
१८	इण् कु से परे स का ष	**इण्कोः, आदेशप्रत्यययोः**	८-३-५७,५९
१९	लुङ् लङ् लृङ् में धातु में अट् आगम	**लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः**	६-१-७१
२०	ङित् लकारों में अन्त के इ का लोप	**इतश्च**	३-४-१००
२१	ङित् लकारों में तस्, थस्, थ, मिप् के स्थान पर ताम्, तम्, त, अम्	**तस्थस्थमिपां तां तं तामः**	३-४-१०१
२२	एक से अधिक व्यञ्जन मिलें तो उनका नाम संयोग	**हलोऽनन्तरा संयोगः**	१-१-७
२३	संयोग के अन्तिम अक्षर का लोप पदान्त में	**संयोगान्तस्य लोपः**	७-२-२३
२४	ङित् लकारों में उत्तम पुरुष में अन्तके स् का लोप	**नित्यं ङितः** ३-४-९८ **स उतमस्य** ३-४-९८	
२५	लोट् में अन्त की इ का उ	**एरुः**	३-४-८६

thearyasamaj.org

२६	लोट् में ङित् लकारों के नियम भी लगते हैं	**लोटो लङ्वत्**	३-४-८७
२७	लोट् में सि का हि और अ से परे हि का लोप	**सेर्ह्यपिच्च** **अतो हेः**	३-४-८७ ६-४-१०५
२८	लोट् में मि का नि	**मेर्निः**	३-४-८९
२९	लिट् परस्मैपद का कोष्ठक णल्, अतुस्, उस् ।थल्, अथुस् अ । णल्, व, म ।	**परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुस-णल्वमाः**	३-४-८२
३०	लिट् लकार आर्धधातुक कहलाता है	**लिट् च**	३-४-११५
३१	लिट् में द्वित्व	**लिटि धातोरनभ्यासस्य**	६-१-८
३२	द्वित्व में से पहिले का नाम अभ्यास	**पूर्वोऽभ्यासः**	६-१-४
३३	अभ्यास में आदि हल् शेष और हल् का लोप	**हलादिः शेषः**	७-४-६०
३४	लङ् में च्लि विकरण	**च्लि लुङि**	२-१-४३
३५	च्लि के स्थान में सिच्	**च्लेः सिच्**	३-१-४४
३६	यदि किसी प्रत्यय में से केवल एक अल् शेष रह जाय तो उसका नाम अपृक्त	**अपृक्त एकाल्प्रत्ययः**	१-२-४१
३७	अपृक्त में ईट् आगम	**अस्तिसिचोऽपृक्ते**	७-३-९६
३८	इट् और ईट् के बीच में स् का लोप	**इट ईटि**	८-२-२८
३९	ष और टु के साथ स् और तु मिले तो ष और टु	**ष्टुनाष्टुः**	८-४-४५
४०	सिच् से परे झि का जुस्	**सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च**	३-४-३०१

thearyasamaj.org

४१	लिङ् में तिप् आदि में यासुँट्	यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च	३-४-१०३
४२	अ से परे या का इय्	अतो येयः	७-१-८०
४३	वल् परे होन पर य व का लोप	लोपोव्योर्वलि	६-१-६४
४४	लिङ् में झि का जुस्	झेर्जुस्	३-४-१०८
४५	अन्तिम स्वर और उसके पीछे जो कुछ हो उस का नाम टि	अचोऽन्त्यादिटि	१-१-६३
४६	आत्मनेपद में टित् लकारों में टि का ए	टित आत्मने पदानां टेरे	१-२-४
४७	जो सार्वधातुक पित् नही होते वे ङित् समझे जाते हैं	सार्वधातुकमपित्	१-२-४
४८	य से परे ङित् आ का इय्	आतो ङितः अतोयेयः	७-२-८१ ७-२-८०
४९	टित् लकारों में थास् का से	थासः से	३-४-८०
५०	लोट् में अन्त के ए का आम्	आमेतः	३-४-९०
५१	लोट् में स से परे ए का व और व से परे ए का अम्	सवाभ्यां वामौ	३-४-७१
५२	लोट् में उत्तम पुरुष में अन्त के ए का ऐ	एत ऐ	३-४-१२
५३	लिट् में त का एश् और झ का इरे	लिटस्तझयोरेशिरेच्	३-४-८१
५४	अ को छोड़ कर अन्य अक्षरों से परे झ् का अत्	आत्मनेपदेष्वनतः अदभ्यस्तात्	७-१-५,४
५५	लिङ् में झ का रन्	झस्य रन्	३-४-१०५
५६	लिङ् में इट् का अ	इटो ऽत्	३-४-१०६
५७	टित् आगम पहले जुड़ते हैं	आद्यन्तौ टकितौ	१-१-४५

thearyasamaj.org

चतुर्थ अध्याय कृदन्त

१	धातु से शब्द बनाने वाले व्याकरण के भाग का नाम कृदन्त हैं		
२	ऋ के स्थान में अर् गुण, आर् वृद्धि	उरण्रपरः	१-१-५०
३	सार्वधातुक तथा आर्धधातुक परे होने पर गुण	सार्वधातुकार्धधातुकयोः	७-३-८४
४	ह्रस्व उपधा को भी	पुगन्तलघूपधस्य च	७-३-८६
५	ञित् णित् परे होने पर वृद्धि	अचोऽञ्णिति	७-२-११५
६	उपधा के अत् को भी	अत उपधायाः	७-२-११६
७	य परे होने पर आ का ई	ईद्यति	६-४-६५
८	च ज के स्थान में कु घित् और ण्यत् परे होने पर	चजोः कुः घिण्ण्यतोः	७-४-५२
९	आ को युक् आगम ञित् णित् कृत् और चिण् परे होने पर	आतो युक् चिण्कृतोः	७-३-३३
१०	ह्रस्व को तुक् आगम पित् कृत् परे होने पर	ह्रस्वस्य पिति कृतितुक्	६-१-७१
११	यु वु के स्थान में अन अक	युवोरनाकौ	७-१-१
१२	उपसर्ग लगने पर क्त्वा के स्थान में ल्यप्	समासेऽनञ्पूर्वेक्त्वोल्यप्	७-१-३७
१३	आन परे होने पर अत् को मुक् आगम	आनेमुक्	७-२-८२
१४	कित् ङित् परे होने पर न गुण न वृद्धि	क्ङिति च	१-१-५
१५	योग्यता, शक्यता, आज्ञा, औचित्य, उद्देश्य इन पांच अर्थों में धातुओं से तव्य तथा अनीय तथा यह कर्म्मवाच्य होते हैं	तव्यत्तव्यानीयरः तयोरेवकृत्यक्तखलर्थाः	३-१-९६ ३-४-७०
१६	अजन्तों से य भी	अचोयत्	३-१-९७

thearyasamaj.org

१७	ऋकारान्त और हलन्तों से ण्य	**ऋहलोर्ण्यत्** ३-१-१२४
१८	कर्ता के अर्थ में धातुओं से तृ, ण्वु णिन् तीन प्रत्यय	**ण्वुल्तृचौ** ३-१-१३३ **सुप्यजातौ णिनिस्ता-च्छील्ये** ३-२-७८
१९	भाववाची तीन प्रत्यय भाव में	**ल्युट् - ल्युट् च** ३-३-१ **घञ् - भावे** ३-३-१८ **क्तिन् - स्त्रियांक्तिन्** ३-३
२०	कालवाची प्रवाही वर्तमान परस्मैपद में शत् प्रवाही वर्तमान आत्मनेपद में शान भूतकाल कर्म वाच्य क्त, भूतकाल कर्तृवाच्य क्तवत् (भूते)	**लटः शतृ शानचावप्रथमासमानाधिकरणे** ३-२-१२४ **तङानावात्मनेपदम्** १-४८ **क्तक्तवतू निष्ठा** १-१-२
२१	पूर्व्व कालिका क्रिया, क्त्वा	**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** ३-४-२१
२२	के लिये इस अर्थ में धातुओं से तुम्	**शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभ-क्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्** ३-४-६५

पञ्चमाध्याय स्त्रैण तथा तद्धित

१	पुंल्लिङ्ग का स्त्रीलिङ्ग स्त्री प्रत्यय में तथा शब्दों से शब्द बनाने के नियम तद्धित में	
२	तद्धित का य और अच् परे होने पर तथा ई परे होने पर अ का लोप (इ + अ = य)	**यस्येति च** ६-४-१४८
३	य और अच् परे होने पर अन् के अ का लोप	**अल्लोपोऽनः** ६-४-१३५

thearyasamaj.org

४	अकारान्तों से टाप् स्त्रीलिङ्ग में	**अजाद्यतष्टाप्** ४-१-४
५	टित्, ढ, अण्, अच् द्वयसच्, दघ्नञ् मात्रच्, तयप्, ठक् ठञ्, कञ्, क्वरप् ये प्रत्यय जिन से लगे हों उनसे स्त्रीलिङ्ग में ङीप्	**टिड्ढाणञ् द्वयसज् दघ्नञ् मात्रच् तयप् ठक् ठञ् कञ्क्वरपः** ४-१-१५
६	आरम्भिक आयु में ङीप्	**वयसिप्रथमे** ४-१-२०
७	तद्धित में ञित्, णित्, कित्, परे होने पर शब्द के अचों में से पहिले अ च् के स्थान में वृद्धि	**तद्धितेष्वचामादेः** ७-२-११७
८	तद्धित में फ् का आयन्। ढ् का एय्। ख् का ईन्। छ का ईय् घ् का इय् प्रत्यय के आरम्भ में	**आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** ७-१-२
९	सम्बन्ध रखने अर्थ में ठक्	**तत्रभवः। तत्र जातः। तस्येदम्।** ४-३-५३ ४-३-२५ ४-३-१२० **ठस्येकः।** ७-३-५७

thearyasamaj.org